भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प नं.

ॐ

सिद्धेभ्य

श्री सोमकीर्ति आचार्यकृत

प्रद्युम्नचरित्र

हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति – १००० प्रति

मूल्य – १० रुपये

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर्स,
अलीगढ़

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशकीय

श्री सोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र नामक प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त गर्व का अनुभव हो रहा है। इस चरित्र में भावलिंगी मुनिराज की हिंसा करने में उद्यमी होनेवाले अग्निभूति–वायुभूति जैसे महापापी, सातवें भव में प्रबल पुण्य प्राप्त प्रद्युम्न–शम्बूकुमार के भव में गिरनार सिद्धक्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करते हैं – इत्यादि वर्णन पढ़ते हुए कल का लकड़हारा आज केवली हो सकता है, ऐसी आत्मा की अनन्त शक्ति सामर्थ्य उत्पन्न होती है।

सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का उपदेश होता है, उसमें प्रथम अनुयोग का नाम प्रथमानुयोग है। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग में जो वर्णन है, उसकी दृष्टान्त द्वारा प्रसिद्धि, प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग के अभ्यास से तीनों अनुयोगों का समझना सरल बनता है।

प्रथमानुयोग के अभ्यास से—

❖ पुराण–पात्रों के प्रसंग पढ़ने–विचारने से दृढ़ता होती है कि क्रमबद्ध अनुसार – होनहार अनुसार परिणमते हुए परिणमन काल में उसके योग्य पुरुषार्थ होता ही है; क्रमबद्ध अनुसार पुरुषार्थ होता ही है, कर्तृत्वपूर्वक करना नहीं पड़ता परन्तु सहजरूप से उसके योग्य पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता, इसलिए मुझे कर्तृत्वपूर्वक पुरुषार्थ करने का बोझा भी नहीं रहता। मैं तो मात्र ज्ञातारूप से रहता हुआ एक ज्ञायकभाव हूँ।

❖ जीवों के भूतकाल के और भविष्य काल के निश्चित परिणामों का वर्णन जानकर क्रमबद्धपर्याय की यथार्थ श्रद्धा द्वारा अकर्तास्वभाव के सन्मुख हुआ जाता है।

❖ संसारी जीवों के पापमय परिणामों होने पर भी उनकी क्षणिकता समझने से स्वभाव में संसार की गन्ध भी नहीं है, ऐसा महिमावन्त ज्ञायक मैं हूँ – ऐसी दृढ़ता होती है।

❖ एक जीव दूसरे जीव पर क्रोध करे तो उसके संस्कार भव–भव तक रहते हैं, राग करे तो उसके संस्कार भी भव–भव तक नहीं छूटते और कुदेव–गुरु–धर्म के सेवन से नरक–निगोद में चिरकाल भ्रमण करके फिर से मनुष्य होने पर कुधर्म के संस्कार पुनः जागृत हो जाना जानकर, जीव को वीतरागधर्म की आराधना की विशेष जागृति रहती है।

भगवान महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि में से प्रवाहित और कुन्दकुन्दादि वीतरागी दिगम्बर सन्तों द्वारा गृहित गम्भीर वचनों का रहस्य समझानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त बहिनश्री चम्पाबहिन के आत्मसाधना से स्वर्णपुरी आज विश्वधरा पर अध्यात्म तीर्थधाम के रूप में सुविख्यात हुआ है। दोनों उभय ज्ञानी–धर्मात्माओं के अन्तःस्थल में पुराण पुरुषों के प्रति व्याप्त अहोभाव उनके प्रवचनों एवं तत्त्वचर्चाओं में अभिव्यक्त हुआ है, उसी से प्रेरणा पाकर स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ द्वारा अनेक पौराणिक ग्रन्थों एवं कथासाहित्य का प्रकाशन किया गया है। प्रस्तुत प्रकाशन भी इसी शृंखला की एक कड़ी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। तदर्थ उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। मुद्रण कार्य के लिये स्मृति ऑफसेट सोनगढ़ के प्रति आभारी हैं।

इस ग्रन्थ के माध्यम से सभी आत्मार्थी आत्महित की प्रेरणा प्राप्त करें, इसी भावना के साथ....

साहित्य प्रकाशन समिति
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़

ॐ

सिद्धेभ्य

श्री सोमकीर्ति आचार्यकृत

प्रद्युम्नचरित्र

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में जगविख्यात मगध नाम का एक देश है, जो अनेक प्रकार की वापिका, कुँए और सरोवरों से शोभायमान है। उस मगधदेश में एक राजगृही नाम का नगर है, वह जिनमन्दिरों द्वारा स्वर्ग-समान सुन्दर प्रतीत होता है। उस नगर में श्रेणिक नामक राजा राज्य करता था। वह जगत विख्यात, शत्रुओं का विजेता, निर्मल चित्त का धारक, विवेकी, सत्पुरुषों की रक्षा में दत्तचित्त, श्रावक के आचार पालनेवाला तथा क्षायिकसम्यक्त्व से शोभायमान था। उस राजा की चेलना नामक एक रानी थी, जो सरल स्वभावी, अपने रूप से देवांगनाओं को भी जीतनेवाली, पाप से भयभीत, जिनमार्ग में निपुण और पतिव्रता तथा स्त्रियों के समस्त ही गुणों की धारक थी।

एक दिन अनेक उद्यानवाले विपुलाचल पर्वत पर श्री महावीर भगवान का समवसरण आया। उस समय भगवान के प्रभाव से वह वन फल-फूलों से परिपूर्ण हो गया तथा हिरण और बाघ का स्वाभाविक बैर-भाव भी दूर हो गया। तब उपवन को विशेष वैभवसहित देखकर वन का रक्षक माली चकित हो गया और उसका कारण खोजने के लिये चारों ओर देखने पर उसे समवसरण दिखायी दिया, जिसे देखकर उसका मन प्रफुल्लित हो गया।

वह माली उपवन में से फल ले जाकर द्वारपाल की आज्ञा से राजा श्रेणिक की सभा में गया। सभा में जाते ही उसने राजा को नमस्कार किया, विनयपूर्वक फलों को भेंट में प्रदान किया और इस प्रकार मनोहर वचन बोलने लगा—'हे महाभाग्यशाली महाराज! आपके उपवन में केवलज्ञान से विभूषित श्री वर्धमानस्वामी समवसरणसहित पधारे हैं।'

समवसरणसहित भगवान के पधारने के समाचार सुनते ही राजा ने भगवान की दिशा में सात कदम आगे बढ़कर भगवान को परोक्ष प्रणाम किया। परोक्ष में विनय करना, वह सज्जनों का लक्षण है। तत्पश्चात् महाराज ने वनपाल को आभूषण भेंट में प्रदान किये और राज्य में आनन्दभेरी बजवायी। वे अपने पूरे परिवारसहित जिनेन्द्रदेव की वन्दना के लिये चल निकले। दूर से समवसरण को देखते ही उन्होंने हाथी से उतरकर सम्पूर्ण राजसी ठाठ छोड़ दिया। समवसरण में जाकर उन्होंने भगवान को तीन प्रदक्षिणा दी तथा अत्यन्त भक्ति से भगवान का स्मरण किया।

तत्पश्चात् महाराज श्रेणिक ने भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर भगवान के मुख्य गणधर श्री गौतमस्वामी से पूछा कि—'हे प्रभो! मुझे कृष्ण नारायण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र सुनने की बहुत इच्छा है। वह कहाँ जन्मा?

उसे शत्रु किस प्रकार उठा ले गया? उसने कैसे-कैसे धर्म कार्य किये? उसकी विभूति कैसी थी? यह सब आपके प्रसाद से मैं जानना चाहता हूँ। आप सन्देहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य समान हैं; इसलिए मेरे सन्देह को दूर करें।'

गौतमस्वामी ने कहा—'हे राजन! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। प्रद्युम्न का चरित्र, पाप का नाश करनेवाला है। पृथ्वी पर बिना पुण्य ऐसा चरित्र सुनने को नहीं मिलता। इसीलिए हे मतिमान! सावधान होकर और स्थिर चित्त करके श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र सुनो।'

❖ ❖ ❖

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सौराष्ट्र नाम का देश है। उस सौराष्ट्र देश में स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर द्वारिका नामक नगरी है। उसकी शोभा अवर्णनीय है। उस द्वारिका नगरी में जगत प्रसिद्ध श्री कृष्ण नारायण नामक राजा राज्य करता था, जिसके समान कोई भी दाता, भोक्ता, विवेकी, और ज्ञान-विज्ञान विभूषित नहीं था। वह वास्तव में प्रजा की पिता समान रक्षा करता था। जिसने बाल्य अवस्था में ही कंस आदि अनेक शत्रुओं का विनाश किया था, गोवर्धन पर्वत उठाया था, यमुना नदी में काले नाग को पराजित किया था, नागशय्या, धनुष और शंख, शत्रु के घर में से प्राप्त किये थे और जरासंध के भाई अपराजित को संग्राम में नष्ट किया था, उन श्री कृष्ण की शूरवीरता का कहाँ तक वर्णन करना? जिन्हें समुद्राक्ष नामक देव ने समुद्र को पराजित कर बारह योजन पृथ्वी प्रदान की थी और जिनके बल को देखकर कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से द्वारिका नगरी की रचना की थी। पृथ्वी

पर ऐसा कोई राजा नहीं था जो उनके शुभलक्षण और गुणों की समानता कर सके। कोटिशिला उठाने का उनका पराक्रम देखकर दूसरे राजाओं ने अपनी शूरवीरता का घमण्ड त्याग दिया था। जिसने परायी स्त्रियों को अपना वक्षस्थल, शत्रु को युद्ध के समय पीठ, और याचकों को नकार कभी बताया नहीं था; ऐसे अनेक गुणों के धारक चन्द्रसमान मनोहर श्री कृष्ण नारायण हरिवंश के राजाओं का शृंगार बनकर राज्य करते थे।

उस राजा के सत्यभामा नामक पटरानी थी जो कि निर्मल चित्तवाली, शीलवती स्त्रियों में शिरोमणी, पुण्यवती, लावण्य में सर्व लक्षणों से मण्डित तथा अपने रूप की सम्पदा से देवांनाओं के रूप से भी उत्कृष्ट थी। सत्यभामा, विद्याधर की पुत्री थी। वह शास्त्रार्थ करने में सरस्वती समान निपुण तथा चतुर थी। जिस प्रकार महादेव को पार्वती और इन्द्र को इन्द्राणी प्रिय थी, उसी प्रकार श्री कृष्ण को सत्यभामा प्रिय थी। श्री कृष्ण को बलभद्र नामक बड़े भाई थे, वे पृथ्वी पर विख्यात थे। उनकी आज्ञा हजारों यादव मानते थे।

एक बार राज्यविभूति से मण्डित श्री कृष्ण महाराज राज्यसभा में विराजमान थे। तभी अचानक आकाशमार्ग से कोई तेजपुंज को नीचे आते देखकर सभाजनों को आश्चर्य हुआ। जब एकदम नीचे आये तो पता पड़ा कि वे तो नारद थे। नारद सदा कौतुहलता के अभिलाषिक, जिनमार्ग में सदा लवलीन, अभिमानरूपी धन के धारक, पापवर्जित हास्य में आसक्त तथा जिनवन्दना में सदैव तत्पर रहते थे।

नारद मुनि को निकट आया देखकर सभा के सर्व सज्जन

तथा श्री कृष्ण महाराज प्रसन्न चित्त से खड़े हो गये। श्री कृष्णजी ने तत्काल निकट जाकर नमस्कार किया, अपने सिंहासन पर विराजमान करके चरण प्रक्षालन किये, भक्तिभाव से उनका स्तवन किया। श्री कृष्ण ने कहा कि—'हे मुनि! आप तप द्वारा पवित्र हो। आज मेरा घर आपके चरण-कमल से पवित्र हुआ है।'—ऐसा कहकर, तत्पश्चात् नारद मुनि की आज्ञा प्राप्त कर श्री कृष्ण दूसरे सिंहासन पर विराजित हो गये।

नारदजी ने कहा—'हे राजन! निश्चय से मैं तुमसे ही मिलने के प्रयोजन से आया हूँ।' तत्पश्चात् नारदजी ने श्री कृष्ण को देश-देशान्तर के ताजा समाचार सुनाये तथा अनेक तीर्थों के आशीर्वाद दिये।

जिस समय श्री कृष्ण और नारद इस प्रकार बातें कर रहे थे, उस समय श्री नेमिकुमार भी वहाँ पधारे। उन्हें आते देखकर श्री कृष्ण-नारद सहित सम्पूर्ण सभा खड़ी हो गयी। नारदजी ने नेमिकुमार को दूसरे सिंहासन पर बैठाया और उनकी बहुत भक्ति करके फिर स्वयं दूसरे सिंहासन पर बैठ गये। तत्पश्चात् सबने आपस में क्षेम-कुशल पूछा और आनन्द से बहुत समय व्यतीत किया।

तत्पश्चात् नारदजी बोले—'हे कृष्ण! मैं अनेक देशों में परिभ्रमण करता हुआ जिन-वन्दना किया करता हूँ। मैं हमेशा तुम्हें स्मरण किया करता हूँ और चाहता हूँ कि तुम सुख से रहो। तुम्हारे सुख से मुझे सुख होता है और तुम्हारे दुःख से मुझे दुःख होता है। इसलिए मैं आज तुम्हारे अन्तःपुर में जाकर तुम्हारी रानियों को भी देखना चाहता हूँ। मुझे देखना है कि तुम्हारी

रानियों के समान संसार में अन्य कोई स्त्रियाँ है या नहीं? तथा तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारे समान विनयवान और उदारचित्त हैं या नहीं?'

नारदजी, श्री कृष्ण की सम्मति से आश्चर्यसहित अन्तःपुर देखने के मनोरथ से अन्दर गये। पहले श्री कृष्ण की पट्टरानी सत्यभामा से ही मिलना चाहिए – ऐसा विचार कर नारदजी पहले सत्यभामा के महल की ओर गये। उस समय सत्यभामा दर्पण को सामने रखकर श्रृंगार कर ही थी। नारदजी अचानक उसके पीछे जाकर खड़े रह गये। सत्यभामा दर्पण में नारदजी का प्रतिबिम्ब देखकर जरा डर गयी। उसका विकृत मुख देखकर नारदजी को दुःख हुआ कि सम्पूर्ण जगत मेरा सम्मान करता है और इस सत्यभामा ने मुझे देखकर मुख विकृत बनाया!

नारदजी तुरन्त ही वहाँ से वापिस मुड़े और अपने कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप किया कि मैं किसलिए सत्यभामा के महल में गया? वे विचार करने लगे कि विचारवानों को जिसका कुल, शील, स्वभाव ज्ञात न हो, उसके घर नहीं जाना चाहिए। ऐसा विचार करते-करते अन्तःपुर से बाहर निकलकर कैलाशगिरि पर पहुँचे। वहाँ जाकर नारद मुनि चिन्ताग्रस्त होकर बैठ गये और विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूँ? मेरे अपमान का बदला किस प्रकार लेना? जो मेरा सम्मान करता है, उसको मैं भी सम्मान देता हूँ परन्तु जो मेरा अपमान करता है, उसका कभी भी भला नहीं हो सकता। सत्यभामा ने मेरा अपमान किया है, अब मैं किस प्रकार बदला लूँ! उसे किस प्रकार दुःसह्य दुःख हो? किस प्रकार उसका मान गलित हो? किसके द्वारा उसका

अपहरण कराऊँ कि जिससे वह दु:खी हो ? उन्हें लगा कि यदि सत्यभामा का अपहरण होगा तो श्री कृष्ण दु:खी होंगे और श्री कृष्ण को दु:खी होने से मुझे दु:ख होगा, इसलिए दूसरा उपाय करूँ।

बहुत विचार करने पर अन्त:करण से एक उपाय उन्हें सूझ गया कि स्त्रियों को जगत में सौत अर्थात् पति की दूसरी पत्नी जैसा दूसरा कोई दु:ख नहीं होता। विधवा होने से, अपुत्रदशा से अथवा दरिद्रता से भी इतना दु:ख नहीं होता, जितना सौत से होता है। तीन काल में सौत समान दु:ख कभी भी हुआ नहीं, वर्तमान में होता नहीं और भविष्य में होगा भी नहीं। इसलिए ढाई द्वीप में सत्यभामा से अधिक सुन्दर स्त्री की शोध में नारदजी निकल पड़े।

❖ ❖ ❖

वहाँ से निकलकर नारदजी ने सर्व प्रथम विद्याधरों की श्रेणी में जाकर देखा तो सत्यभामा की सुन्दरता के समान कोई कन्या दृष्टिगोचर नहीं हुई, जिससे नारदजी बहुत दु:खी हुए। भूमिगोचरी राजाओं के अन्त:पुर में जाने का निर्णय करके वहाँ गये, परन्तु सत्यभामा से अधिक सुन्दर कोई स्त्री दिखायी नहीं दी, जिससे नारदजी अत्यन्त खेदखिन्न हुए।

एक दिन नारदजी चारों ओर से घूमते-घूमते जा रहे थे कि देववशात् वे कुण्डनपुर पहुँच गये। इस नगरी का राजा भीष्म था। नारद उनकी सभा में गये। नारद को आते देखकर राजा अपने सिंहासन से खड़ा हो गया, उसने नारदजी को प्रणाम किया और उन्हें सिंहासन पर बैठाकर, फिर स्वयं भी बैठ गया। थोड़ी

देर तक परस्पर कुशल वार्ता करने के पश्चात् नारदजी ने पूछा कि यह किसका पुत्र है? राजा ने कहा यह मेरा पुत्र है। नारदजी ने विचार किया कि यदि यह इतना सुन्दर है तो इसकी बहिन होगी तो मेरा काम हो जायेगा। इस प्रकार विचार कर उन्होंने पूछा—'हे राजन! इसकी माता को दूसरी कितनी सन्तानें हैं?' राजा ने कहा—'एक यह पुत्र और दूसरी पुत्री है।'

नारदजी ने पूछा—'विवाहिता है या अविवाहिता?'

राजा ने कहा—'वह कन्या राजा शिशुपाल को दिया जाना निश्चित किया है।'

यह जवाब सुनकर नारदजी ने मन ही मन विचार किया कि अब मेरा मनोरथ सफल हो जायेगा। उन्होंने राजा से कहा कि मुझे तुम्हारा अन्तःपुर देखने जाना है। तब राजा ने कहा कि बहुत अच्छा, आप मेरे महल को पवित्र करें।

जब नारदजी उसके सुन्दर रनवास में गये, वहाँ भीष्म राजा की एक बाल विधवा बहिन थी। उसने नारद के बाह्य लक्षणों से जान लिया कि यह नारद हैं। उसने खड़े होकर योग्य सत्कारपूर्वक नारद को सिंहासन पर बिठाया। पश्चात् राजा भीष्म की सभी रानियों ने नारद का आशीर्वाद लिया। थोड़ा वार्तालाप होने के बाद नारदजी ने पूछा—'यह पुत्री किसकी है?' उसने कहा कि—'यह महाराज की पुत्री रुक्मणी है।' ऐसा कहकर उसने नारद को प्रणाम कराया। तब नारद ने रुक्मणी को ऐसा आशीर्वाद दिया—'हे पुत्री! तू श्री कृष्ण महाराज की पट्टरानी हो!' नारद मुनि के वचन सुनकर रुक्मणी चकित हो गयी। उसने अपनी बुआ के सन्मुख देखा। उसकी बुआ ने नारद से पूछा—'प्रभु!

तुमने अभी आशीर्वाद में जिनका नाम लिया, वे श्री कृष्ण कौन हैं? वे कहाँ निवास करते हैं? उनकी क्या ऋद्धि है? उनकी उम्र क्या है? वह आप कहो।'

नारद मुनि ने श्री कृष्ण का वर्णन किया और कहा कि वे नारायण हैं तथा उनके घर में नेमिकुमार जिनराज विराजमान हैं। तदुपरान्त उनकी रूप सम्पदा का, शक्ति का भी बहुत वर्णन किया। नारदजी के वचन सुनकर भीष्म की बहिन ने रुक्मणी से कहा कि तूने जो यह सुना है, वह सत्य है। नारदजी के आशीर्वाद पर विश्वास रख। रुक्मणी ने कहा कि यह किस प्रकार हो सकता है? मुझे तो शिशुपाल को देना निश्चित किया है? तब उसकी बुआ ने कहा कि तुम्हारे माता-पिता ने शिशुपाल को देना निश्चित नहीं किया है परन्तु तुम्हारे भाई ने किया है और एक बार अपने यहाँ अतिमुक्तक मुनिमहाराज आहार के लिये पधारे थे, उन्होंने आहारदान के बाद थोड़ा धर्म का उपदेश दिया था। तब महाराजा ने पूछा था कि हे स्वामी! मेरी पुत्री किसकी रानी बनेगी? तब अतिमुक्तस्वामी ने कहा था कि जगत में जो नारायणरूप से प्रसिद्ध होगा और यादवों का नाथ होगा, वह इसका नाथ बनेगा। मुनिराज का कहा हुआ कभी भी असत्य नहीं होता।

❖ ❖ ❖

यह वृत्तान्त सुनकर राजा श्रेणिक ने बीच में गौतमस्वामी से प्रश्न किया कि शिशुपाल के निकट भीष्म राजा का पुत्र रुप्यकुमार किसलिए गया था? तब गौतमस्वामी ने कहा कि एक दिन जब शिशुपाल शत्रुओं पर चढ़ाई करने को तैयार हुआ, तब उसने

राजा भीष्म को युद्ध में साथ देने के लिये दूत भेजा। दूत का पत्र पढ़कर भीष्म राजा युद्ध में जाने के लिये तैयार हुए। तब रुप्यकुमार उनके सन्मुख सिर झुकाकर खड़े हो गये और कहा—'पिताजी! मैं पुत्र होने पर भी आप युद्ध के लिये जाओ, यह योग्य नहीं है क्योंकि पुत्र का यही धर्म है कि वह माता पिता को सुखी करे।' पिताजी ने ये वचन सुनकर उसे युद्ध में जाने के लिये आशीर्वाद प्रदान किया।

रुप्यकुमार के आने से शिशुपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसका सम्मान किया। दोनों सेनायें युद्ध के लिये निकल पड़ी और युद्ध में शत्रु की पराजय हुई। युद्ध में रुप्यकुमार के कारण विजयश्री प्राप्त हुई होने से राजा शिशुपाल ने उसका बहुत सम्मान किया। उस सम्मान से प्रसन्न होकर रुप्यकुमार ने अपनी बहिन शिशुपाल को देने के लिये कहा।

❖ ❖ ❖

तत्पश्चात् बुआ ने रुक्मणी से कहा—'तू चिन्ता मत कर। मैं ऐसा उपाय करूँगी कि श्री कृष्णजी निश्चित ही तेरे भरतार होंगे।' बुआ की बात सुनकर रुक्मणी अत्यन्त प्रसन्न हुई। नारदजी भी श्री कृष्ण की बहुत महिमा करके वापिस कैलाशपर्वत पर आ पहुँचे। वहाँ बैठकर नारदजी ने रुक्मणी का एक चित्रपट बनाया, उसे लेकर वे द्वारिका पहुँच गये।

❖ ❖ ❖

श्री कृष्ण ने आकाशमार्ग से नारदजी को आते हुए देखा, इसलिए उन्होंने खड़े होकर सामने जाकर उनका सत्कार किया, आसन दिया और स्वयं दूसरे आसन पर बैठ गये। थोड़ी देर धर्म

चर्चा चली। अवसर देखकर श्री कृष्ण ने पूछा—'आप तो ढाई द्वीप में घूमते रहते हो तो आपने कोई विनोद (हँसी-मजाक) की वार्ता सुनी हो या कोई चमत्कार देखा हो तो मुझसे कहो। यदि मेरे योग्य कोई नवीन वस्तु लाये हों तो वह भी मुझे दो, क्योंकि आप मेरे परम मित्र हैं। आपके समान मेरा कोई मित्र नहीं है।'

श्री कृष्ण के वचन सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए। वे कुछ बोले नहीं परन्तु अपना हाथ लम्बाकर रुक्मणी का चित्रपट उन्हें दे दिया। श्री कृष्ण ने जैसे ही चित्रपट देखा कि तुरन्त वे विचार करने लगे कि निश्चित ही इस सुन्दरी ने मेरा मन चुरा लिया है। नारदजी ऐसी सुन्दर कन्या कहाँ देखकर आये हैं, कि जिसका चित्रपट बनाकर तुरन्त ही मेरे लिये ले आये हैं? प्रकृति ने ऐसी रूपवती किस प्रकार बनायी होगी? इस प्रकार श्री कृष्ण चित्रपट को देख-देखकर आश्चर्य से अनेक संकल्प-विकल्प करने लगे। समाधान के लिये उन्होंने नारदजी से पूछा कि—'हे स्वामिन! इस सुन्दरी का पूरा परिचय मुझे प्रदान करें, क्योंकि इसे देखते ही मेरा मन चलायमान हो गया है।'

श्री कृष्ण के वचन सुनकर नारदजी ने कहा कि—'हे राजन! अपने चित्त को दुःखी मत करो। यह कोई देवांगना, गांधर्वी अथवा विद्याधरी का रूप नहीं है। यह तो एक भूमिगोचरी का रूप है।' ऐसा कहकर रुक्मणी सम्बन्धी सम्पूर्ण वार्ता श्री कृष्ण को कह सुनायी। नारदजी ने कहा—'हे राजन! जब तक तुम संग्राम में शिशुपाल को पराजित नहीं करोगे, तब तक रुक्मणी तुम्हें प्राप्त नहीं हो सकती है।' यह सुनते ही श्री कृष्ण थोड़े

उदास हो गये। वे विचार करने लगे कि रुक्मणी अब मुझे किस प्रकार प्राप्त हो! कब मैं उससे मिलूँगा? नारद ने उन्हें बहुत समझाया और सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा कि आप चिन्ता न करो, रुक्मणी आपको ही मिलेगी। उद्यमवन्त लोग ही सुख भोग सकते हैं। इस प्रकार बहुत समझाकर नारदजी अपने स्थान की ओर चले गये, परन्तु इस ओर श्री कृष्ण की भूख और नींद दोनों उड़ गये।

❖ ❖ ❖

उसी समय 'शिशुपाल मुझे लेने आनेवाला है' यह समाचार सुनते ही रुक्मणी भयभीत हो उठी। इसलिए उसने अपनी बुआ से कहा—'यदि श्री कृष्ण मुझे प्राप्त नहीं होंगे तो मैं मर जाऊँगी परन्तु शिशुपाल के साथ नहीं जाऊँगी।' उसकी बुआ ने कहा कि—'हे पुत्री! तू चिन्ता मत कर। तेरी इच्छानुसार ही होगा।' फिर उसने कुशल नामक दूत को बुलाया और उसे गुप्त रीति से सभी बात बताकर प्रेमसूचक पत्र देकर श्री कृष्ण के पास द्वारिका भेज दिया।

कुशल दूत शीघ्र ही द्वारिका के लिये रवाना हो गया। द्वारिका पहुँचते ही वह सीधे राज्यसभा में पहुँचा, वहाँ श्री कृष्ण अपने भाई बलदेवसहित विराजमान थे। उसने श्री कृष्ण से कहा कि मैं आपके लिये प्रेम सम्बन्धी कुछ पत्र लाया हूँ। ऐसा कहकर

कुशल दूत ने ईशारा किया, जिससे सभा विसर्जित करके दूत के साथ दोनों भाई एकान्त में आ बैठे। दूत ने कहा—'शिशुपाल राजा अब थोड़े ही दिनों में राजकन्या रुक्मणी को वरने आनेवाला है परन्तु रुक्मणी तो मात्र आपके ही प्रेम में आसक्त है। यदि आप उसे प्राप्त नहीं होओगे तो वह अपना जीवितव्य मिटा देगी। आप मेरे वचन यथार्थ और सारगर्भित समझकर कर्तव्य को चित्त में रखकर यथोचित् उपाय करें।'

श्री कृष्ण ने प्रेम के वशीभूत होकर कुशल दूत से पूछा कि—'हे दूत! वहाँ आकर मैं ठहरूँगा कहाँ? उससे मिलूँगा किस प्रकार?' दूत ने कहा—'आप सीधे कुण्डनपुर पहुँचे। वहाँ एक 'प्रमद' नामक बगीचा है, जिसमें एक अशोकवृक्ष के नीचे कामदेव की मूर्ति है। उस अशोकवृक्ष पर मनोहर ध्वजा लगी हुई है। हे नाथ! आप वहाँ पधारकर और बगल के वृक्ष के नीचे छुपकर रहना। निश्चय ही रुक्मणी वहाँ कामदेव की पूजा के बहाने अपनी सखियों को पीछे छोड़कर अकेली आयेगी और तुम्हें मिल जायेगी। इसलिए अपना हित समझकर आपको वहाँ अवश्य पधारना चाहिए। आप निश्चित समझें कि आपको छोड़कर वह बाला दूसरा पति नहीं करेगी। वह आपसे मिलने के लिये ही वहाँ आयेगी और यदि आप नहीं मिलोगे तो निश्चय ही वह अपने प्राण वहीं त्याग देगी।' इस प्रकार बारम्बार प्रार्थना करके दूत वहाँ से रवाना हो गया।

❖ ❖ ❖

दूत के चले जाने के बाद दोनों भाई कुण्डनपुर जाने का उपाय विचारने लगे, क्योंकि सत्यभामा विद्याधर की पुत्री होने से

कोई विघ्न न कर बैठे, ऐसा विचार कर अर्धरात्रि में दोनों भाई कवच धारण करके अनेक प्रकार के शस्त्र साथ लेकर कुण्डनपुर जाने के लिये रथ पर सवार हो गये। थोड़ी ही देर में वे कुण्डनपुर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर वे शीघ्र ही प्रमद उद्यान में गये, वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे कामदेव की मूर्ति देखकर उन्होंने रथ के घोड़े वही छोड़ दिये और स्वयं छिप गये।

❖ ❖ ❖

जिस समय कृष्ण-बलदेव द्वारिका से निकले, उसी समय नारदजी शिशुपाल के निकट पहुँचे और थोड़ी देर दूसरी बातें करने के बाद नारदजी ने लग्न-पत्रिका देखने के लिये माँगी। लग्न-पत्रिका हाथ में आते ही नारदजी उसे चिन्ता भरी नजरों से देखने लगे। जब शिशुपाल ने उनसे पूछा कि—'हे देव! आप चिन्तित दिखायी देते हो।' तब उन्होंने कहा—'राजन! विवाह के समय तुम्हारे शरीर को कष्ट होगा - ऐसा मुझे लगता है, इसलिए पूरी तैयारी के साथ जाना।' ऐसा कहकर नारदजी वहाँ से रवाना हो गये।

❖ ❖ ❖

नारदजी के चले जाने के बाद राजा शिशुपाल चिन्ताग्रस्त हो गया। शंकित होकर उसने विशाल सेना तैयार की और अनेक प्रकार के साधनोंसहित वह कुण्डनपुर पहुँचा। पहुँचते ही उसने नगरी को चारों ओर से घेर लिया। जिस समय शिशुपाल ने नगर को घेर रखा था, उसी समय कृष्ण और बलदेव वहाँ प्रमद उद्यान में आये थे।

जब रुक्मणी ने कुण्डनपुर को घिरा हुआ जाना, तब वह

अत्यन्त दु:खी होकर विचार करने लगी कि—हाय! अब मैं श्री कृष्ण से किस प्रकार मिलूँगी? तब उसकी बुआ ने उसे आश्वासन प्रदान किया और कहा—'तू चिन्ता न कर, सब ठीक हो जायेगा।' तत्पश्चात् उसने रुक्मणी के साथ उसकी सखियों को लिया और धीरे-धीरे गीत गाते-गाते सब निकल गयीं। जब शिशुपाल के सैनिकों ने उन्हें रोका और उनके राजा की आज्ञानुसार उन्हें बाहर नहीं जाने दिया, तब रुक्मणी की बुआ ने कहा—'कन्या ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि उसका विवाह राजा शिशुपाल के साथ होगा तो वह कामदेव की पूजा करेगी। अभी जब अब उसका विवाह राजा शिशुपाल के साथ हो रहा है तो उनके सौभाग्य के लिये वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने जा रही है और उसे जाना ही चाहिए।' सैनिकों ने सम्पूर्ण वृत्तान्त शिशुपाल को कह दिया, जिसे सुनकर शिशुपाल पानी-पानी हो गया और रुक्मणी समुदाय को वन में जाने के लिये अनुमति प्रदान कर दी।

❖ ❖ ❖

सघन वन में थोड़े चलने पर जहाँ प्रमद उद्यान आया, वहाँ रुक्मणी की बुआ ने उससे कहा—'बेटी! अब तू जा और अपने स्वामी की पूजा कर। यहीं तेरा देवता है।' ऐसा कहकर स्वयं सब सखियों के साथ वहीं रुक गयी और रुक्मणी को अकेले भेज दिया। रुक्मणी मन्द गति से अशोकवृक्ष के समीप गयी और चारों तरफ देखने लगी। श्री कृष्ण वृक्ष के पीछे बैठे-बैठे उसे देख रहे थे। वे भूल गये थे कि अभी वे एक उद्यान में बैठे हैं। वे तो प्रेम भरी नजरों से रुक्मणी को देखते ही रहे। तब रुक्मणी ने आवाज लगाते हुए कहा—'यदि मेरे पुण्ययोग से द्वारिकानाथ यहाँ आये हों तो मेरी आवाज सुनकर मुझे तुरन्त दर्शन दें।'

रुक्मणी ने ये शब्द कहे ही थे कि शीघ्र ही श्री कृष्ण और बलदेव वृक्ष के पीछे से बाहर आये। बलदेव तुरन्त ही अपना रथ तैयार करने गये। श्री कृष्ण को देखकर रुक्मणी की नजर झुक गयी, वह शर्मा गयी, वह काँपने लगी। इतनी देर में रथ तैयार करके बलदेव बोले—'स्त्रियों को स्वभाव से ही लज्जा होती है, तो फिर कन्या को तो होनी ही चाहिए। कृष्ण! तू क्या देख रहा है? इसका हाथ पकड़कर इसे रथ में बैठा दे। तू स्त्री चरित्र को नहीं जानता। सत्य ही है, तू पूरा गोपाल अर्थात् गाय-भैंस चरानेवाला ही है।' तब श्री कृष्ण ने प्रेम से रुक्मणी को रथ में बैठा लिया और दोनों भाई रथ में बैठ गये।

बलदेवजी ने रथ को बहुत शीघ्रता से चलाया और श्री कृष्ण ने अपना शंख फूँका तथा जोर से कहा—'मैंने—श्रीकृष्ण ने रुक्मणी को हठ से हरण कर लिया है, जिसकी शक्ति हो, वह रुक्मणी को मुझसे छुड़ा ले। हे शिशुपाल राजा! मेरी बात सुनो, यदि रुक्मणी को मैं हरकर ले जाऊँ तो फिर तुम्हारे जीवन से क्या? हे भीष्मराजा! तुम्हारी पुत्री को द्वारिका के राजा और उसके भाई ने हरी है। हे रुप्यकुमार! तेरी बहिन का हरण किया है। तेरी धीरता, अभिमान और शूरता किस काम की? यदि तुझमें सामर्थ्य हो तो मेरे रथ के पीछे आ और रुक्मणी को मुझसे छुड़ाकर ले जा। यदि तुम्हारे में कुछ साहस नहीं है तो तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। हे राजाओं! मेरे साथ संग्राम में युद्ध किये बिना तुम सब किस प्रकार कृतार्थ हो सकते हो? यदि मैं तुम सबके सामने रुक्मणी को हरकर ले जाता हूँ तो तुम्हारी शूरवीरता, धीरता और सामर्थ्य निश्चित ही व्यर्थ है।' ऐसा कहकर

अपने उत्तम रथ को दोनों भाई शीघ्रता से वन में से खुले मैदान की ओर ले गये।

श्री कृष्ण की बात सुनकर सब घबरा गये। फिर तुरन्त ही रुप्यकुमार और शिशुपाल अपनी पूरी सेना लेकर मैदान में श्री कृष्ण-बलदेव के सन्मुख युद्ध करने हेतु प्रस्तुत हुए। एक ओर दोनों भाई तथ दूसरी ओर हजारों योद्धाओं को देखकर रुक्मणी चिन्तित होकर रुदन करने लगी। उसकी आँखों में से बहते आँसुओं को देखकर बलदेव ने श्री कृष्ण से कहा कि—'जरा इस ओर देख और इसे अपनी शक्ति का अनुमान तो करा।' श्री कृष्ण ने अपनी अंगुली में से अंगूठी निकालकर उसका हीरा मसलकर चूरा कर दिया और स्वस्तिक बनाया तथा एक तीर से सामने के सात ताड़ के वृक्षों को काट दिया। यह देखकर रुक्मणी की उनके प्रति होनेवाली चिन्ता तो मिट गयी परन्तु अभी उसका मुख मलिन था।

श्री कृष्ण ने कहा—'हे सौभाग्यशालिनी! अब तुम्हें किसकी चिन्ता है, वह तो बता?' तब रुक्मणी ने कहा कि—'हे स्वामी! मुझे आपकी शक्ति के लिये किंचित् भी शंका नहीं है परन्तु सामने मेरा भाई भी है, अतः उसका वध नहीं करें।' श्री कृष्ण हंसकर बोले—'तू चिन्ता नहीं कर, ऐसा ही होगा।'

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने शिशुपाल के साथ घोर युद्ध किया और उसे यमलोक पहुँचा दिया। इस ओर बलदेव ने उसकी पूरी सेना को तितर-बितर कर दिया और रुप्यकुमार को नागपाश से बाँधकर रुक्मणी को सौंप दिया तथा कहा कि अब अपने भाई के ऊपर से मक्खियाँ उड़ाते रहना।

जिस समय युद्ध चल रहा था, उस समय कलह प्रेमी नारदजी आकाश में खड़े-खड़े सन्तुष्ट होकर नृत्य कर रहे थे।

इस प्रकार युद्ध करके महान मदोन्मत्त शत्रु को पराजित करके श्री कृष्ण और बलदेव प्रसन्नतापूर्वक रुक्मणी के नजदीक आये। रुक्मणी ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा—'हे भुज पराक्रम के धारक स्वामी! कृपा करके मेरे भाई को नागपाश से मुक्त करो।' तब श्री कृष्ण ने हँसते हुए रुप्यकुमार को बन्धनमुक्त करते हुए कहा—'तुम मेरे परम बन्धु हो, इसलिए स्नेह दृष्टि रखकर तुम हमारे पास आते-जाते रहना और स्मरण रखना कि यह रुक्मणी तुम्हारी बहिन है।' इस प्रकार कहने पर भी कुमार ने लज्जा से कुछ उत्तर नहीं दिया और सब नगर की ओर चले गये।

तत्पश्चात् कृष्ण-बलदेव, रुक्मणी को भलीभाँति रथ में बैठाकर द्वारिका नगरी जाने के लिये रवाना हुए। आचार्य कहते हैं कि जिन कृष्णराज ने शत्रुओं को पराजित करके राजा भीष्म की पुत्री रुक्मणी को प्राप्त किया, उनके माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है? वन, उपवन की शोभा देखते-देखते वे रैवतक पर्वत पर पहुँचे। नन्दनवन सम् उस वन में बलदेवजी ने श्री कृष्ण और रुक्मणी का विधिपूर्वक विवाह कराया। उसी समय से पृथ्वी पर वह वन, रुक्मणी वन नाम से प्रसिद्ध हो गया।

❖ ❖ ❖

इतने में द्वारिका नगरी में समाचार प्रसारित हो गये कि श्री कृष्ण, शत्रु को पराजित कर रुक्मणी को लेकर बलदेव के साथ रैवतकगिरि पर पधारे हैं। उनके आगमन के समाचार सुनकर

प्रजाजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण नगर का शृंगार किया गया। सभी कुटुम्बीजन स्वागत करने के लिये सन्मुख आये और प्रेम से एक-दूसरे से मिलकर तीनों ने नगर में प्रवेश किया। महल में पहुँचने पर बलदेवजी अपने नव खण्ड के महल में गये और श्री कृष्ण, रुक्मणी के साथ अपने नव खण्ड के महल में पहुँचे। श्री कृष्ण ने वह नव खण्ड का महल रुक्मणी के अधिकार में कर दिया।

श्री कृष्ण ने उस समय से ही अन्यत्र जाना बन्द कर दिया। प्रतिदिन श्री कृष्ण सभी नित्य क्रिया उस रुक्मणी के महल में ही करते थे। उन्होंने अपनी दूसरी सभी रानियों से मिलना भी बन्द कर दिया। विद्याधरी सत्यभामा, श्री कृष्ण के वियोग से दुखित हो गयी परन्तु अभिमान के कारण उसने उनकी बिलकुल परवाह नहीं की। उस समय नारदजी प्रतिदिन सत्यभामा से मिलने आते और उसके दु:ख में अभिवृद्धि करके स्वयं प्रसन्न होते थे। वैसे भी अपने शत्रु को दु:खी देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा? सत्य है कि गुणों का आदर सब करते हैं, मात्र विद्या और उत्तम कुल से कार्य सिद्ध नहीं होता। देखो! विद्याधर की पुत्री सत्यभामा, विद्यावान और उत्तम कुलवाली होने पर भी श्री कृष्ण उसे भी भूल गये।

एक दिन रुक्मणी ने श्री कृष्ण से पूछा—'हे स्वामी! मैंने पहले सुना था कि सत्यभामा नामक रानी आपको प्राण से भी अधिक प्रिय है, परन्तु अब तो आप उसके महल में बिलकुल नहीं जाते, उसका क्या कारण है?' तब श्री कृष्ण ने उत्तर दिया—'प्रिय! सुन, सत्यभामा को बहुत अभिमान रहता है और मुझे वह

पसन्द नहीं। ऐसे स्वर्ण से क्या काम कि जिससे कान खण्डित हो जाये !' तब रुक्मणी ने विनय से कहा—'किसी के हाथ में कोई कीमती वस्तु आवे तो उसे क्या वह छोड़ देगा ? स्वर्ण से कान खण्डित होते हैं, तथापि कौन उसका त्याग करता है ?' रुक्मणी के नीतियुक्त उदार वचन सुनकर श्री कृष्ण ने कहा—'हे प्रिये! तुम्हारे कहने से मैं उसके पास जाऊँगा।'

❖ ❖ ❖

एक दिन श्री कृष्ण महाराज सभा में विराजमान थे, उसी समय कुरुदेश के राजा दुर्योधन का एक दूत वहाँ आया। उसने राज्यसभा में पहुँचकर श्री कृष्ण महाराज को विनयपूर्वक नमस्कार किया और अपने राजा का पत्र उन्हें देकर अपने योग्य स्थान पर जाकर बैठ गया। वह पत्र मन्त्री ने अपने हाथ में लिया और पढ़ा। उसका भावार्थ इस प्रकार था कि यदि भविष्य दुर्योधन को पुत्री हो और श्री कृष्ण के यहाँ जिस प्रथम पुत्र का जन्म हो, उन दोनों का विवाह करके मैत्री सम्बन्धी प्रगाढ़ करना। यदि दुर्योधन के घर में पुत्र का जन्म हो और श्री कृष्ण के यहाँ पुत्री का जन्म हो तो भी इसी प्रकार सम्बन्ध बाँधना। श्री कृष्ण ने अति प्रसन्न होकर इस सम्बन्ध की स्वीकृति प्रदान की और दूत को भेंट देकर विदा किया। उसके पीछे अपना दूत दुर्योधन के पास भेजकर सम्बन्ध का निश्चय किया। इस समाचार की मात्र सत्यभामा को खबर पड़ी। रुक्मणी या दूसरी किसी रानियों को यह समाचार ज्ञात नहीं हुए।

❖ ❖ ❖

श्री कृष्ण ने रुक्मणी के साथ बहुत काल व्यतीत किया।

पुण्य के उदय से प्राणीमात्र को सुख की प्राप्ति होती है। पुण्य से ही श्री कृष्ण ने द्वारिका का राज्य प्राप्त किया, शिशुपाल को पराजित किया और रुक्मणी को प्राप्त किया।

इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि भव्य जीवों को पुण्य के प्रभाव से समस्त वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, इसलिए भव्य प्राणियों को श्री जिनेन्द्रप्रणीत धर्मानुसार पुण्य उपार्जन करना चाहिए। पुण्य से ही चन्द्र समान मनोहर उज्ज्वल परिणाम होते हैं। नरगति और देवगति के जो सुख तीन भुवन में प्राप्त होना कठिन है, वे सब पुण्य के प्रभाव से सहज में प्राप्त होते हैं - ऐसा जानकर भव्य जीवों को सदा काल पुण्य का संचय करना चाहिए।

❖ ❖ ❖

एक बार जब रानी रुक्मणी शयन कर रही थी, तब उसे रात्रि के पिछले पहर में स्वप्न आया। प्रातः काल उठकर नित्य क्रिया पूर्ण करके वह श्री कृष्ण के समीप गयी और रात्रि का स्वप्न कहा तथा उसका फल पूछा। श्री कृष्ण स्वप्न सुनकर प्रसन्न हुए और कहा—'हे देवी! तुम्हें निश्चित ही आकाशगामी और मोक्षगामी पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी।' स्वप्न का फल सुनकर रानी रुक्मणी अत्यन्त प्रसन्न हुई और प्रणाम करके अपने महल में चली गयी।

राजा मधु का जीव, जिसने पूर्व भव में बहुत तप किया था और वहाँ से सोलहवें स्वर्ग में गया था, वह स्वर्ग में से चयकर रानी रुक्मणी के गर्भ में आया था।

रानी सत्यभामा ने भी इसी प्रकार स्वप्न देखा और उसका

फल भी श्री कृष्ण ने उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होना बतलाया। कोई कल्पवासी जीव, स्वर्ग में से चयकर उसके गर्भ में आया था।

गर्भकाल के पूरे नौ मास व्यतीत होने के बाद रुक्मणी के उत्तम तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभकरण योग और पंचांग शुद्धि में पुत्ररत्न का जन्म हुआ। पुत्र को देखकर रानी रुक्मणी को अत्यन्त आनन्द हुआ। पुत्र को सूर्य समान प्रतापवान और शुभलक्षण का धारक जानकर रुक्मणी और उसके कुटुम्बियों को बहुत प्रसन्नता और सन्तोष हुआ। तुरन्त ही नौकरों को श्री कृष्ण के समीप जाकर बधाई देने के लिये भेजा।

जिस समय रुक्मणी के नौकर, श्री कृष्ण के निकट पहुँचे, उस समय वे सो रहे थे; इसलिए नौकर उनके चरणों के समीप खड़े रहे। उसी समय सत्यभामा को भी पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई, जिससे उसके नौकर भी बधाई देने के लिये आये और वे श्री कृष्ण के मस्तक के निकट खड़े रहे। लोक में जैसा मालिक हो, वैसे ही नौकर देखने में आते हैं!

जब श्री कृष्ण निद्रा से जागृत होकर बैठ गये, तब सर्व प्रथम सामने खड़े हुए रुक्मणी के नौकरों ने बधाई दी कि—'हे नराधीश! आप चिरंजीवी रहो! रानी रुक्मणी को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है। उस पुत्र के साथ आप चिरकाल तक राज्य सुख का अनुभव करो!' नौकरों के मुख से प्रथम पुत्ररत्न के समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजचिह्न के अतिरिक्त सभी आभूषण नौकरों को प्रदान किये और मन्त्री को भेजने के लिये कहा।

तत्पश्चात् तुरन्त ही सत्यभामा के नौकरों ने भी महाराज को पुत्ररत्न की प्राप्ति के समाचार प्रदान किये। सत्यभामा को पुत्ररत्न

की उत्पत्ति के समाचार सुनकर महाराज अधिक सुखी हुए और दूसरे लोगों को उन्हें भेंट देने के लिये कहा। इतनी देर में मन्त्री आ पहुँचे। महाराज ने मन्त्रियों से कहा—'हे मन्त्रीवर! आज मेरे यहाँ दो पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई है, इसलिए पूरे राज्य में किमिच्छिक दान दिया जाये और नगर का शृंगार किया जाये; साथ ही सभी कैदियों को मुक्त करके उत्सव मनाया जाये।' महाराज की आज्ञानुसार दान किया गया, उत्सव हुआ और कैदियों को मुक्त किया गया। इस प्रकार पाँच दिन तक नगर में उत्सव चलता रहा।

पाँच दिन का उत्सव पूर्ण होने के बाद, रात्रि को जब रानी रुक्मणी अपने पुत्र के साथ प्रसूतिगृह में सो रही थी, तब एक दुर्घटना घटित हो गयी, जो इस प्रकार है—

❖ ❖ ❖

पूर्व में एक बार मोह के वश होकर अथवा दुर्बुद्धि की प्रेरणा से राजा मधु ने अपने सामन्त राजा हेमरथ की स्त्री का हरण किया था। अपनी स्त्री का हरण जानकर, उसके वियोग से राजा हेमरथ पागल हो गया था, क्योंकि **मोह महा दुःखदायी होता है।** तपस्वियों के कहने से वह तापस हो गया। अन्त में तप करके मरण को प्राप्त हुआ और मरकर दैत्य हुआ।

एक दिन वह दैत्य, विमान में बैठकर आकाश में रुक्मणी के महल के ऊपर आया और अचानक विमान रुक गया। वह अशुभ विचार करने लगा कि मेरा विमान कौन रोक सकता है? या तो कोई मित्र आपत्ति में है अथवा कोई शत्रु है। उसने तुरन्त ही अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह तो मेरे पूर्व भव की

स्त्री का हरण करनेवाला मधु का जीव है, जो वहाँ से स्वर्ग में गया और अब यहाँ जन्म लिया है। पूर्व में तो उसने मुझे दुर्बल जानकर बहुत दुःख दिया था, परन्तु तब तो मैं असमर्थ था, इसलिए मैं कुछ नहीं कर सका, परन्तु अभी दैत्य की अवस्था में मैं सब प्रकार से समर्थ हूँ और वह एकदम असमर्थ बालक है, इसलिए मैं उस दुराचारी को अवश्य नष्ट कर दूँगा। यदि मैं इस बालक को नष्ट न करूँ तो मेरे असुरपने को धिक्कार है।

इस प्रकार विचार करके वह असुरदेव अपने विमान में से नीचे उतरकर रानी रुक्मणी के महल में आया। वहाँ आकर उसने सभी सैनिकों तथा स्त्रियों को अपनी ऋद्धि से सुला दिया। पश्चात् वह महल के दरवाजे के छिद्र में से अन्दर गया और रुक्मणी के पास से बालक को उठा लिया तथा महल के दरवाजे खोलकर, बालक को लेकर बाहर निकल गया। उसे लेकर अपने विमान में बैठ गया और विचार करने लगा कि इससे किस प्रकार मारकर पूर्व का बदला लेना चाहिए। बहुत विचार करने के बाद उसने निर्णय किया कि एक विशाल शिला के नीचे दबाकर इसे मार देना चाहिए। ऐसा विचारकर वह बालक को तक्षक नामक पर्वत पर ले गया। उस पर्वत पर एक खदीरा नामक अटवी थी। वह अटवी इतनी अधिक भयानक थी कि उसे देखकर यमराज को भी भय उत्पन्न हो जाये! वहाँ उस दयाहीन असुर ने बाबन हाथ लम्बी और पचास हाथ मोटी दलदार कठोर मजबूत पत्थर की शिला के नीचे उस बालक को दबा दिया। पश्चात् वह देव अपने पैर से उस शिला को दबाकर बोला कि—'हे दुरात्मन्! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है, यह

तुम्हारे पूर्व कर्म का ही फल है।' ऐसा कहकर अपने मनोरथ की सिद्धि समझकर वह असुर वहाँ से निकल गया।

इतने घोर उपसर्ग करने पर भी बालक मरण को प्राप्त नहीं हुआ। सत्य ही है कि पुण्यात्मा जीवों को आपत्ति कुछ भी त्रास-दुःख नहीं दे सकती। पुण्य के माहात्म्य से दुःख भी सुखरूप में परिणमित हो जाता है। मनुष्य भले वन में हो या शहर में हो, परन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य ही देहधारियों की रक्षा करनेवाला है। जिस भव्य जीव के भाग्य में पूर्व भव का संचित किया हुआ पुण्य पड़ा हो, उसका कैसा भी शत्रु क्यों न हो परन्तु वह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।

❖ ❖ ❖

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक विजयार्द्ध नामक सुप्रसिद्ध पर्वत है। उसकी दक्षिण दिशा में मेघकूट नाम का एक जगत विख्यात नगर धनधान्यादि से सम्पन्न और जिन-चैत्यालयों से सुशोभित है। उस नगर में कालसंवर नामक राजा, कनकमाला नाम की रानी-सहित राज्य करता था। एक दिन वह राजा अपनी रानी सहित अपने विमान में बैठकर घूमने निकला था। देववशात् वह उसी तक्षक पर्वत पर आया। वहाँ से निकलते हुए अचानक ही राजा का विमान रुक गया। उसका कारण जानने के लिये वह राजा अपनी पत्नी सहित पर्वत पर उतरा। वहाँ पर्वत पर खदीरा वन में एक विशाल शिला हिलते हुए देखकर उसने आश्चर्य से उस शिला को थोड़ी अपनी शक्ति से और थोड़ी अपने विद्या के बल से उठाकर देखा तो एक बालक सो रहा था और उसके सामने देखकर हँस रहा था।

ऐसे सुन्दर, बलवान, धीर-वीर, कान्तिवान, प्राणीमात्र के नेत्र और मन को हरण करनेवाले, पूर्वभव के संचित पुण्य को प्रगट करनेवाले और चरमशरीरी होने के कारण अपने बैरी दैत्य को जीतने में सर्व गुण सम्पन्न बालक को राजा कालसंवर ने देखा और उसे अपने हाथ में लेकर उठा लिया। उसने विचार किया कि यह कोई उच्चकुलीन भाग्यशाली बालक प्रतीत होता है। उसने वह बालक अपनी रानी को प्रदान किया और कहा—'हे देवी! तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है और तुम्हें बालक की लालसा लगी रहती है तो यह सर्वांग सुन्दर, सर्व गुणसम्पन्न बालक ग्रहण कर।' बालक को हाथ में लेने से रानी को थोड़ा संकोच हुआ और कहा कि—'महाराज! तुम्हारी दूसरी रानियों से पाँच सौ पुत्र हैं। यदि मेरा यह पुत्र उनका गुलाम होकर रह जाये तो वह मुझसे सहन नहीं होगा, मेरा जीवन निष्फल हो जायेगा।' ऐसा कहकर रानी रुदन करने लगी।

रानी कनकमाला को रोते देखकर राजा का हृदय शिथिल हो गया। उसने रानी से कहा—'हे देवी! तू व्यर्थ का शोक मत कर। देख, मैं तेरे सामने ही तेरे इस पुत्र को युवराज पद प्रदान करता हूँ।' ऐसा कहकर राजा कालसंवर ने अपने मुख के ताम्बुल से बालक को लाल तिलक किया और कहा—'बेटा! मैंने वास्तव

में तुझे युवराज पद पर स्थापित किया है। अब तो इस राज्य का स्वामी या तो मैं हूँ या तू है, दूसरा कोई नहीं।' ऐसा कहकर राजा ने बालक, रानी को सौंप दिया। रानी ने बालक को अपने हाथ में लिया और सिर पर हाथ फिराकर आशीर्वाद दिया कि—'बेटा! तू माता-पिता को सुख प्रदान कर और तू चिरंजीवी हो।' ऐसा कहकर रानी, बालक को चुम्बन करके अत्यन्त ही आनन्दित हुई।

इस प्रकार तक्षक पर्वत की खदीरा नामक अटवी में से उस बालक को ले जाकर राजा-रानी दोनों विमान में बैठकर अपने मेघकूट नगर की ओर रवाना हुए। दोनों ने नगर में धूमधाम से प्रवेश किया। राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा—'मन्त्रीवर! रानी को बहुत समय से गूढ़ गर्भ होने से आज वन में उसे पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई है। इसलिए प्रसूति के समस्त कार्य शीघ्र कराओ, नगर को शोभायमान करो और दीन-दुःखी लोगों को किमिच्छिक दान प्रदान करो।' तब से सातवें दिन उस बालक का नाम प्रद्युम्न रखा गया। पुण्य के माहात्म्य से प्रद्युम्न मात्र राजा कालसंवर और रानी कनकमाला को ही प्रिय नहीं था, अपितु दूसरी सभी रानियों को भी वह उतना ही प्रिय हो गया था।

पूर्व भव के बैरी दुष्ट असुर ने उसे मारने में कुछ बाकी नहीं रखा था, तथापि मेघकूट नगर में राजा कालसंवर के यहाँ सुख से वृद्धिगत होने लगा, इसमें मात्र पुण्य ही कारण है। **जिसके विशेष पुण्य का संचय होता है, उसे सहज में ही अनेक प्रकार के सुख प्राप्त हो जाते हैं, ऐसा जानकर हे भव्य जीवों! सदाकाल अपना परम हित करनेवाले धर्म को धारण करो। धर्म ही समस्त प्रकार के सुख का करनेवाला है, धर्म ही जीव का भला करनेवाला**

है, धर्म ही गुरुओं का गुरु है, धर्म से ही स्वर्ग, मोक्षादि के अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं और धर्म से ही सदाकाल निर्मल चन्द्रमा की चाँदनी जैसी निर्मल कीर्ति व्याप्त होती है। इसलिए हे बुद्धिमान भव्य जीवो! जिस जिनधर्म की उपासना मुनिन्द्र करते हैं, उसे तुम भी धारण करो।

❖ ❖ ❖

एक ओर कालसंवर के स्वर्ग समान सुन्दर महलों में प्रद्युम्नकुमार अपने माता-पिता को सुखी कर रहा था, जबकि इस ओर द्वारिका नगरी में रुक्मणी अपने बालक के हरण से अत्यन्त दु:खी थी। जब दुष्ट दैत्य बालक को हरकर ले गया, तब थोड़ी देर पश्चात् रानी रुक्मणी निद्रा से सचेत होकर अपने पुत्र को इधर-उधर चारों ओर देखने लगी परन्तु कहीं भी नहीं दिखने से वह चिन्ताग्रस्त हो गयी। उसने नौकरों से पूछा—'बालक कहाँ है?'—परन्तु किसी को कुछ भी ज्ञात न होने से वे कुछ उत्तर नहीं दे सके। कुछ भी उत्तर न मिलने से वह पागलवत् हो गयी। अचानक बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। सभी नौकर एकत्रित हो गये। शीतोपचार आदि द्वारा रानी रुक्मणी को सचेत किया गया। सचेत होते ही वह अपने पुत्र की याद में छाती कूटने लगी और जोर-जोर से अत्यन्त करुण विलाप करने लगी। उसे रुदन करते देखकर अन्त:पुर की सभी रानियाँ भी विलाप करने लगीं।

अचानक और पहले कभी भी नहीं सुना हो, ऐसे कोलाहल से श्री कृष्ण जागृत हो गये। उन्होंने नौकर को आज्ञा दी कि भलीभाँति खोज करके मुझे बतलाओ कि इस अर्धरात्रि में इतना

कोलाहल किसका है? सेवक तुरन्त ही अन्तःपुर में गया और हकीकत जानकर आया, किन्तु कुछ भी बोले बिना दुःखी हृदय से सिर झुकाकर खड़ा रहा। जब श्री कृष्ण ने पूछा कि यह कोलाहल किसका था, तब सेवक ने अत्यन्त दुःखित और गद्‌गद् वाणी से कहा—'हे प्रभो! मैं क्या कहूँ? कुछ कहने योग्य बात नहीं है।' सेवक ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'हे नाथ! कहते हुए मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। बात यह है कि किसी दुष्ट ने महारानी रुक्मणी के बालक का हरण कर लिया है।'

'क्या.. क्या.. क्या!.....' ऐसा कहते ही श्री कृष्ण मूर्च्छित हो गये। सेवकों ने उन्हें शीतोपचार द्वारा सचेत किया। सचेत होते ही पुत्र हरण की बात स्मरण में आते ही वे अत्यन्त शोक और विलाप करने लगे। वे तुरन्त बान्धवों सहित सीधे रुक्मणी के महल में गये। श्री कृष्ण के आने से रुक्मणी अधिक जोर-जोर से विलाप करने लगी। ऐसे समय में माता-पिता को कैसा अपार दुःख होता है, वह अवर्णनीय है, वह मात्र अनुभवगम्य है!

श्री कृष्ण कहने लगे—'**जगत में दो ही पदार्थ हैं, होनहार और पुरुषार्थ! उसमें होनहार ही प्रबल है; जो पुरुषार्थ का गर्व करते हैं, उन्हें धिक्कार है। यदि पुरुषार्थ ही प्रबल होता तो मैं वासुदेव, खुली हुई नग्न तलवार समान तेजस्वी, मेरे पुत्र को शत्रु किस प्रकार हरकर ले जाये!**'—इत्यादि प्रकार से श्री कृष्ण और रुक्मणी विलाप कर रहे थे, तब वृद्ध मन्त्री आये। उन्होंने विनयपूर्वक गद्‌गद् वाणी से कहा—

'हे महाराज! आप संसार के स्वरूप को भलीभाँति जानते हैं। जो जीव इस असार संसार में जन्म लेता है, उसका आयु के

अन्त में नियम से मरण होता है। छह खण्ड पृथ्वी को वश में करनेवाले जितने चक्रवर्ती हुए हैं, वे सब आयु के अन्त में काल का ग्रास बन गये हैं। पृथ्वी पर अब उनका नाममात्र रह गया है। धर्मचक्र के प्रवर्तक तीर्थंकर भगवान, जो सुर-असुर द्वारा वंदित हैं, जिन्होंने केवलज्ञानरूपी दीपक तीन लोक के पदार्थ को क्रमरहित प्रत्यक्ष देखा है; जो संसाररूपी समुद्र से स्वयं तैरने और अन्य को तिराने में समर्थ हैं, उनका भी परमौदारिकशरीर आयु के अन्त में काल का ग्रास बन गया है। अरिहन्त भगवान का यही कथन है कि जो जीव जन्म लेता है, वह नियम से मृत्यु को प्राप्त होता है और सभी जीव अपने-अपने कर्मानुसार सुख-दु:ख भोगते हैं। हे स्वामी! यमराज का छोटे-बड़े सबके साथ एक समान वर्तन होता है, इसलिए शोक और दु:ख तजकर शान्त होवें क्योंकि शोक, संसार का कारण है। शोक करने से कहीं जीव का दु:ख घटता नहीं है किन्तु बढ़ता है। जो बुद्धिमान पुरुष होते हैं, वे किसी चीज़ के खो जाने से अथवा किसी की मृत्यु से शोक नहीं करते क्योंकि शोक, भूख और अनिद्रा-इन तीन की जैसे-जैसे चिन्ता की जाती है, वैसे-वैसे इनमें वृद्धि होती जाती है। हे तीन खण्ड के स्वामी! यदि आप ही इस प्रकार चिन्ताग्रस्त होकर शोक करेंगे तो आपकी प्रजा भी दु:खी हो जायेगी; इसलिए आपको खेद करना उचित नहीं है। क्या आप समान ज्ञानवानों को—जो कि इस संसार का स्वरूप भलीभाँति जानते हैं, उन्हें इस प्रकार शोक करना चाहिए? कभी भी नहीं। तदुपरान्त इसमें भी सन्देह नहीं है कि जो बालक यादव कुल में उत्पन्न होता है, वह सौभाग्यवान, बलवान और दीर्घ आयु का धारक होता है।'

मन्त्रियों के इस प्रकार समझाने से श्री कृष्ण ने शोक का त्याग किया और उन्होंने इस प्रकार रुक्मणी को समझाकर उसे भी शान्त किया और कहा—'हे देवी! मैं अभी अपने सुभटों को समस्त दिशाओं में भेजकर तुम्हारे बालक को खोजकर तुम्हारी गोद में बैठा देता हूँ।' ऐसा कहकर श्री कृष्ण ने अपने सुभटों को दशों दिशाओं में भेज दिया। थोड़े दिनों में वे सब वापिस आये और बालक के समाचार नहीं मिलने से लज्जापूर्वक मुख नीचा करके खड़े रहे। श्री कृष्ण उनका भाव समझकर मन मसोसकर, शोक दबाकर चुप रहे। उस समय पूरी नगरी शोक में डूब गयी। पूरी नगरी उत्साह और उत्सव हीन हो गयी।

❖ ❖ ❖

इस हृदयविदारक घटना के कुछ समय पश्चात्, घूमते-घूमते नारदजी द्वारिका के ऊपर से गुजर रहे थे, तब उन्होंने सम्पूर्ण नगरी को उत्सवहीन एवं शोकाकुल देखा और वे एक उद्यान में उतर गये। उन्होंने मार्ग में गमन करते हुए किसी पथिक से शोक का कारण पूछा। उन्हें विदित हुआ कि रानी रुक्मणी के पुत्र का हरण हो जाने से श्री कृष्ण के शोक के कारण नगरी की ऐसी दशा है।

वज्रप्रहार जैसे ये कठोर वचन सुनते ही नारदजी बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। थोड़ी देर में शीतल हवा से सचेत हो गये। वे श्री कृष्ण की दशा का स्मरण करके वे शीघ्र ही श्री कृष्ण के निकट पहुँच गये। श्री कृष्ण ने उन्हें देखकर यथायोग्य नमस्कार किया और आसन देकर उनके निकट ही शोक व्यक्त किया। नारदजी दुःख के भार से कुछ भी बोल नहीं सके।

देखो, जिनेन्द्रदेव ने जो स्याद्वादवाणी का प्ररूपण किया है, नारदजी उसके ज्ञाता थे, उसके बल से वे अपने दु:ख के स्वरूप को पहिचानते थे। वे सात तत्त्वों के ज्ञाता थे और दूसरों को सम्बोधन करने में भी पूर्ण पण्डित थे, तथापि श्री कृष्ण के दु:ख को देखकर दु:खी हो रहे थे, क्योंकि **मोह की लीला अपरम्पार है।**

थोड़ी देर पश्चात् अपने दु:ख को दबाकर संक्लेशसहित गद्गद् वाणी से नारदजी ने कहा—'हे कृष्णराज! मेरी बात ध्यान से सुनो। जो कुछ सर्वज्ञ जिनेश्वर ने कहा है, वही मैं तुम्हें कहता हूँ। जितने संसारी जीव हैं, उनका एक न एक दिन विनाश अवश्य होता है—ऐसा जानकर, शास्त्र रहस्य के जाननेवालों को शोक नहीं करना चाहिए। चिन्ता करने से गयी हुई वस्तु मिल थोड़े ही जाती है! यदि कोई मर जाये और उसकी चिन्ता की जाये - शोक किया जाये तो वह वापिस थोड़े ही आ जाता है? जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने संसार को असार जानकर परित्याग किया है और वन में जाकर तपश्चरण किया है, वे ही धन्य हैं। उन सत्पुरुषों को माता-पिता के वियोग से, शत्रु द्वारा पुत्र का हरण होने से अथवा किसी के मरण या जन्म से न सुख होता है ओर न दु:ख होता है! यद्यपि मैंने घर छोड़ दिया है, सांसारिक सुखों का त्याग किया है, वन में वास करता हूँ, देशव्रत संयम का धारक हूँ तथा सम्यक्त्व से विभूषित हूँ, तो भी केवल तुम्हारे स्नेह से, तुम्हें चिन्तातुर देखकर मैं दु:खी और चिन्तित हूँ। हे कृष्ण! पुत्र के वियोग से तुम्हें अप्रमाण दु:ख हो रहा है, और तुम्हें दु:खी देखकर मैं भी जीवन निरर्थक समझता हूँ।'

श्री कृष्ण को समझाने के पश्चात् उनके कहने से नारदजी

रानी रुक्मणी के महल में उसे सम्बोधन / समझाने के लिये गये। नारदजी ने रुक्मणी को भी बहुत समझाया और आशा बँधायी कि तुम्हारा पुत्र अवश्य वापिस आयेगा। नारदजी ने कहा—'पूर्व में सीताजी के भाई भामण्डल को भी पूर्व का शत्रु उठाकर ले गया था और ऐसा होने पर भी उसका पालन-पोषण विद्याधरों के देश में हुआ तथा थोड़े समय पश्चात् अनेक विद्याओंसहित वापिस आकर वह अपने माता-पिता से मिला। इसी प्रकार तुम्हारे पुत्र को भी अवश्य कोई पूर्व का शत्रु देव उठाकर ले गया है परन्तु तुम चिन्ता नहीं करो, वह भी थोड़े समय में अनेक विद्याओंसहित वापिस आयेगा और अवश्य तुम्हें मिलेगा। मैं अभी ही पूर्व विदेह में जहाँ श्री सीमन्धर भगवान विराजमान हैं, वहाँ जा रहा हूँ, क्योंकि कंस के छोटे भाई श्री अतिमुक्तक मुनिराज, जिन्हें केवलज्ञान हुआ था, वे मोक्ष में पधारे हैं और श्री नेमिकुमार मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारक हैं, परन्तु वे कुछ कहेंगे नहीं। श्री सीमन्धर भगवान के समीप प्रद्युम्न के समाचार जानकर मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास आकर बतलाऊँगा'—ऐसा कहकर, सान्त्वना प्रदानकर नारदजी सीधे पूर्व विदेह में श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में जा पहुँचे।

❖ ❖ ❖

नारदजी पुण्डरिकणी नगरी में जहाँ श्री सीमन्धर भगवान समवसरणसहित विराजमान थे, वहाँ जा पहुँचे। दूर से ही समवसरण को देखकर वे नीचे उतरे और भक्तिपूर्वक समवसरण में प्रवेश किया। भगवान को वन्दन-प्रदक्षिणा करके उनकी स्तुति करने के पश्चात् जहाँ मनुष्य के कोठे में बैठने गये, वहाँ पाँच सौ

धनुष की ऊँचाईवाले मनुष्यों को देखकर नारदजी ने विचार किया कि यदि भूल से इन लोगों का पैर मेरे ऊपर गिरा तो मेरा आयुष्य पूर्ण हो जायेगा। इसलिए इनके बीच में बैठने की अपेक्षा भगवान के आसन के निकट बैठना अच्छा है – ऐसा विचार कर नारदजी, भगवान के सिंहासन के नीचे बैठ गये। उसी समय जो पद्मनाभि नामक चक्रवर्ती वहाँ बैठे हुए थे, उन्हें नारदजी को नीचे बैठा हुआ देखकर आश्चर्य हुआ कि यह किस गति का मनुष्याकार जीव है!? उन्होंने भगवान से प्रश्न किया—'प्रभो! यह किस गति का जीव है? यहाँ क्या कर रहा है? कहाँ से यहाँ आया है?'

भगवान की दिव्यध्वनि खिरी कि—'हे राजन! सुन, यह मनुष्य है, यह भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुआ है, इसका नाम नारद है। यह पृथ्वी पर विख्यात ज्ञानवान और चतुर है। यह ढाई द्वीप में अपनी इच्छानुसार घूम सकता है। यह नौवें अधोबदन नामक नारद है जो मोक्षमार्ग में निपुण है, देशव्रतधारी है। यह भरतक्षेत्र के अर्ध चक्री श्री कृष्ण नारायण का परम मित्र है। यहाँ श्री कृष्ण के पुत्र की खोज में निकला है और वह पुत्र अभी कहाँ है, उसका ठिकाना जानने के लिये आया है।'

चक्रवर्ती पूछता है—'हे भगवान! मुझे कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र कहिये।' चक्रवर्ती के प्रश्न के उत्तर में भगवान की वाणी में आया कि 'श्री कृष्ण को रुक्मणी नामक रानी से प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ है। उसका जन्म होते ही पूर्व का शत्रु दैत्य उसे उठाकर ले गया है और एक विशाल शिला के नीचे उसे मार डालने के लिये दबा दिया। उसके जाने के बाद विद्याधरों का राजा कालसंवर

अपनी पत्नी कनकमाला सहित वहाँ आया और शिला को अपने आप हिलते देखकर उसने विद्या-बल से उस शिला को उठाया तो नीचे बालक को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने बालक को उठा लिया और अपनी रानी को सौंप दिया। अभी वह विद्याधरों के यहाँ बड़ा हो रहा है। जब वह सोलह वर्ष का होगा, तब सोलह प्रकार के लाभ और दो विद्याओंसहित द्वारिका आयेगा तथा अपने माता-पिता से मिलेगा।'

इतना सुनकर चक्रवर्ती ने पुनः प्रश्न किया—'हे कृपासिन्धु! आप कृपा करके कृष्ण पुत्र प्रद्युम्नकुमार का सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाने का अनुग्रह करें। उसे पूर्व में दैत्य से बैर होने का क्या कारण था? उसने पूर्व में कैसा पुण्य बाँधा था?' इस प्रश्न के उत्तर में भगवान की वाणी में आया—

❖ ❖ ❖

''जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगध नाम का एक रमणीय देश है। उस देश में शालिग्राम नामक एक विख्यात नगर है। एक बार इस नगर में सोमदत्त नामक एक रूपवान ब्राह्मण रहता था, जिसे अपनी जाति-कुल का बहुत अभिमान था। उसकी पत्नी का नाम अग्निला था। उनके दो पुत्र थे, जो वेद शास्त्र के पारगामी, नवयुवक, धन-धान्य सम्पन्न, बलवान, अपनी जाति पर घमण्ड करनेवाले, दूसरों को तृण समान माननेवाले और विद्या वैभव से संयुक्त थे। पहले पुत्र का नाम अग्निभूति और दूसरे पुत्र का नाम वायुभूति था। ये दोनों भाई मिथ्यामतालम्बी और जैनधर्म से सर्वथा परान्मुख थे। ये दोनों भाई श्री वासुपूज्य तीर्थंकर के समय में हुए थे। जब ये दोनों भाई मगध देश में रहते थे, उसी समय

एक दूसरी घटना इस प्रकार घटित हुई।

मगध देश के बाहर रमणीक वन में श्री नन्दीवर्धन नामक आचार्य अपने शिष्यवर्ग के साथ पधारे। वे आचार्य काम का नाश करनेवाले, सर्व शास्त्रों के पारगामी, ज्ञाननेत्र के धारक, गम्भीर वाणी बोलनेवाले, अनेक प्रकार की लब्धि से शोभायमान और त्रिगुप्ति के पालक थे। वे जहाँ वन में अशोकवृक्ष के नीचे एक शिला पड़ी थी, उस पर बैठकर पठन-पाठन-ध्यान आदि अपनी क्रिया करने लगे। जब नगरजनों को ज्ञात हुआ कि वन में मुनिराज पधारे हैं तो कितने ही जिनशासन के भक्त लोग वन्दना करने गये। कितने ही लोकलाज से गये और कितने ही कौतुहल से वहाँ गये।

अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर अनेक प्रकार के उत्सव करते-करते नगरवासियों को वन की ओर जाते देखकर ब्राह्मण पुत्र अग्निभूति और वायुभूति ने किसी श्रावक से पूछा कि 'आज सब अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर वन की ओर क्यों जा रहे हैं ?' तब उस श्रावक ने उत्तर दिया कि 'सर्व शास्त्रों के पारगामी, अनेक ऋद्धियों के धारक, देव और मनुष्यों द्वारा पूजने योग्य मुनिराजश्री वन में पधारे हैं और उनकी वन्दना के लिये सर्व सज्जन जा रहे हैं।'

श्रावक की बात सुनकर द्विजपुत्रों ने कहा—'रे मूर्ख शिरोमणी ! तू कैसे निन्दनीय वचन बोल रहा है ? दिगम्बर तो जगत निन्द्य होते हैं, उनका शरीर मलिन होता है, वे मूर्ख होते हैं, वेद शास्त्र को बिल्कुल नहीं जानते। उन्हें साधु किस प्रकार कहा जा सकता है ? जो ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हो, वेदों का पाठी हो, बुद्धिमान

हो, तरण-तारन समर्थ हो, वही साधु कहलाता है। हे सठ! इसलिए पृथ्वीतल पर हम ही पूज्य हैं।'

तब जिसका हृदय मुनिभक्ति से भींगा हुआ था, उस श्रावक ने कहा—'अरे दुष्ट! तुम धर्म-अधर्म की क्रिया से रहित हो, गृहस्थदशा में पड़े हो, स्त्रियों के मोह में फँसे हो, निन्दा के पात्र हो तो फिर तुम्हें किस प्रकार साधु कहा जाये? जिनके चरणों की रज से भव्य जीवों ने अपनी देह पवित्र की है तथा जो निःसन्देह स्वर्गादि के सुख भोगकर परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करते हैं, वे ही सच्चे साधु जगत्पूज्य हैं। वे सर्व प्राणियों के हित के कर्ता हैं तथा लोक निन्दा के समय मौन धारण करनेवाले हैं, कायवार्ता से रहित हैं और स्वयं जगत से तिरने तथा दूसरों को तारने में समर्थ हैं। पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त तुम्हारे जैसे ब्राह्मण कभी भी साधु नहीं कहलाते। हे द्विजपुत्रों! साधु की निन्दा करते हुए तुम्हारी जीभ के हजारों टुकड़े क्यों नहीं हो गये!' श्रावक के वचन सुनकर द्विजपुत्र क्रोध से भरकर बोले—'इस मूर्ख से वाद करने से क्या लाभ? हम उन दिगम्बरों से ही वाद करेंगे।' ऐसा कहकर वे ब्राह्मण अपने घर गये और श्रावक वन में गया।

घर जाकर द्विजपुत्रों ने पिता को प्रणाम करके कहा—'हे पिताजी! अपने शहर के निकट वन में मूर्ख दिगम्बर मुनि आये हैं, उनके साथ विवाद करने के लिये हम जा रहे हैं। क्योंकि यदि वे दो-तीन दिन भी वन में रहेंगे तो बहुत मनुष्य वेद शास्त्र से विमुख हो जायेंगे। वे जैन शास्त्रों को भलीभाँति जानते हैं; इसलिए वेद शास्त्र को मूल से उखाड़ देंगे। इसलिए हमारा विचार है कि

हम वेद शास्त्र के बल से उन्हें वाद में पराजित कर यहाँ से शीघ्र भगा दें।'

तब पिताजी ने कहा—'हे पुत्रो! तुम वन में मत जाओ क्योंकि दिगम्बर साधु बहुत चतुर होते हैं। विविध देशों में विहार करते रहने से अनुभवी हो जाते हैं। सर्व शास्त्रों के पारगामी होने से वे शास्त्रार्थ में निपुण होते हैं और प्रतिदिन पठन-पाठन में लगे रहते हैं। इसलिए जगत में किसकी सामर्थ्य है कि जो दिगम्बर साधु से वाद करे!'

गर्व से युक्त मूर्ख पुत्रों ने पिता के वचनों पर ध्यान नहीं दिया। मूर्खता से-अभिमान से चकचूर वे बोले कि—'हम दोनों को विद्या अथवा वाद में पराजित करनेवाला पृथ्वी पर कौन है? आप ऐसे दीन वचन कैसे कहते हो? देखो हम अभी वन में जाते हैं और उन्हें पराजित करके आते हैं।' ऐसा कहकर माता-पिता के इनकार करने पर भी वे दोनों भाई वन की ओर चल निकले।

वे दोनों भाई धीरे-धीरे बड़बड़ाते हुए वन में जहाँ नन्दीवर्धन महामुनिराज विराजमान थे, वहाँ जा रहे थे। मार्ग में एक पहाड़ की तलहटी में सात्विकी मुनिराज ने उन्हें जाते हुए देखा और विचार किया कि ये दोनों मूर्ख, महामुनिराज को बाधा पहुँचायेंगे। ऐसा विचारकर सात्विक मुनिराज ने दोनों भाईयों को बुलाकर कहा—'तुम कहाँ जा रहे हो?' तब विप्रों ने बहुत अहंकार से कहा कि—'हम नन्दीवर्धन नामक साधु को वाद में पराजित करने जा रहे हैं।' तब सात्विक मुनिराज ने कहा—'तुम्हें जो कुछ वाद करना हो, वह मेरे साथ करो, मैं तुम्हारी सब अभिलाषा पूर्ण करूँगा।'

मुनिराज के वचन सुनकर उन विप्रों ने क्रोध से कहा—'रे लज्जाहीन! यदि तू विद्वानों की भरी सभा में हमें वाद में परास्त करेगा तो हम जीवनपर्यन्त तुम्हारे शिष्य बन जायेंगे और यदि तू पराजित होगा तो शीघ्र ही यह नगर छोड़कर चले जाना।'

मुनिराज ने जरा भी कषाय किये बिना कहा—'तुम्हारे वचन प्रमाण हैं।'

इस प्रकार मुनिराज और विप्रों के बीच वाद के समाचार सुनते ही समस्त नगरवासी वहाँ उमड़ पड़े।

मुनिराज ने विप्रों से कहा—'तुम्हें कोई प्रश्न हो तो पूछो।'

तब विप्रों ने अहंकार से कहा—'तुझे कोई प्रश्न हो तो हमसे पूछ, हम तुझे उत्तर देंगे।'

तब मुनिराज ने कहा—'मैं तो यह जानता हूँ कि तुम सोमशर्मा ब्राह्मण के पुत्र हो परन्तु पूर्व भव की कौन सी पर्याय छोड़कर यहाँ आये हो, वह तुम्हें खबर है?' तब विप्र ने कहा—'तू निश्चित ही सठ लगता है! ऐसा कोई है कि जो पूर्वभव की बात जानता हो! हम तो नहीं जानते; यदि तुझे सत्य बात पता हो तो बतला।'

❖ ❖ ❖

मुनिराज ने कहा—'पहले इस शालीग्राम नामक गाँव में प्रवर नामक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था, जिसके यहाँ खेती का कार्य होता था। उसके खेत में एक बड़ वृक्ष था। जिसके नीचे कर्मयोग से दो सियार रहते थे। मृतकों का माँस खाकर वे दोनों अपना गुजारा चलाते थे और आनन्द में रहते थे। एक दिन वह प्रवर नामक ब्राह्मण अपने खेत की ओर जा रहा था, वहाँ अचानक

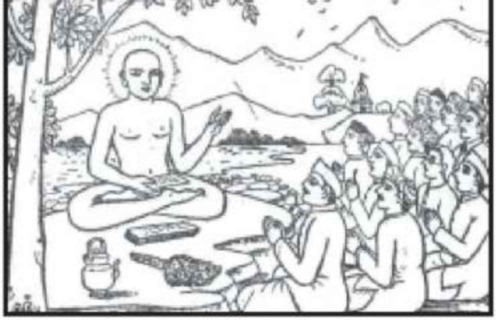

बहुत भयंकर वर्षा प्रारम्भ हुई, जिससे ब्राह्मण वापस अपने घर चला गया। लगातार सात दिन तक वर्षा गिरती रही और वे सियार भूख के दुःख से तड़फते रहे। आठवें दिन जब वर्षा बन्द हुई और पानी कुछ कम हुआ, तब दोनों सियार बाहर निकले और तीव्र भूख के कारण, एक गिरी हुई रस्सी थी, उसे खा गये। जिससे शूल की भयंकर वेदना उठने से दोनों मर गये और वहाँ से इस सोमशर्मा ब्राह्मण के यहाँ तुम दोनों द्विजपुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हो।

हे ब्राह्मणों! जो तुम्हारे वैराग्य का कारण है, उसे तुम क्यों भूल गये! इस भव-भवान्तर में जीव जैसे पुण्य बाँधते हैं, तद्नुसार मिष्ट फल भोगते हैं। जो जीव यथार्थ धर्म से विमुख रहता है, वह जाति, कुल, रूप, सौभाग्य, धन-धान्य से भी वर्जित रहता है और विद्या, यश, बल, लाभ आदि उत्तमोत्तम पदार्थों की प्राप्ति नहीं होती। धर्म विहीन प्राणी, उत्तम सुख का भागी नहीं होता। यथार्थ धर्म के प्रभाव से यह जीव उत्तम अंग का धारक, उच्चकुल में जन्म लेनेवाला, विद्यावान, धनवान, सुखी, देव पूजा में तत्पर, समस्त जीवों की दया पालनेवाला, सर्व का हितैषी और क्रोध, मान, कषाय से रहित होता है। इसलिए तत्त्वज्ञानियों को पहले ही धर्म-अधर्म का स्वरूप भले प्रकार से समझ लेना चाहिए और पाप को दूर ही से छोड़कर अपना चित्त धर्म में लगाना चाहिए। हे द्विजपुत्रों! यदि तुम ऐसा कहो कि पूर्व भव की वार्ता

जो वर्णन की गयी है, वह तुम्हें स्मरण नहीं है तो मैं समस्त मनुष्यों के सामने प्रत्यक्ष कर देता हूँ, वह सुनो!'

❖ ❖ ❖

'वह प्रवर नामक किसान वर्षा बन्द होने के बाद जब अपने खेत की दशा देखने गया तो देखता है कि हल आदि सभी सामान बिखरा पड़ा है और उसकी रस्सी आधी खायी हुई पड़ी है तथा बगल में मरे हुए दो सियार पड़े हैं। प्रवर को दोनों सियारों पर बहुत गुस्सा आया, जिससे उसने उन दोनों सियारों की चमड़ी कटवाकर उनकी भातड़ी बनाकर अपने घर ले गया और अपने घर के छापरा की खूँटी से कसकर बाँध दिया और निश्चिन्त हो गया। वह भातड़ी अभी तक वहीं बँधी पड़ी है। यदि किसी को विश्वास न होता हो तो यह जो मूँगा बैठा हुआ है, इसके घर में जाकर देख लो।

जो प्रवर नामक ब्राह्मण था, उसने अनेक यज्ञ, होम आदि किये थे, इसलिए आयु के अन्त में मरकर वह मोहवश अपने पुत्र के पुत्ररूप से जन्मा। उस बालक को अपने घर की जमीन देखकर जातिस्मरण हो गया। पूर्व भव की बात याद आने पर वह विषाद करने लगा कि अब मैं क्या करूँ? अब मैं अपने ही पुत्र को पिता और पुत्रवधू को माता किस प्रकार कहूँ? ऐसी चिन्ता करते-करते उसे मूक रहने का विचार आया। तदनुसार बाल्यावस्था से ही मौन धारण करके मूक जैसी अवस्था में ही युवा हुआ है। हे द्विजपुत्रो! अपना वाद-विवाद सुनने की अभिलाषा से वह मूक ब्राह्मण सभी मनुष्यों के साथ यहाँ आया है और इस सभा में सामने बैठा है।'

दयासिन्धु सात्विकी मुनिराज ने सभी मनुष्यों के सामने उस मूक ब्राह्मण को बुलाया और कहा—'हे प्रवर पौत्र! तूने अज्ञानता से मौन किसलिये धारण कर रखा है। यह मौन छोड़ दे और अपने अमृतस्वरूप वचनों से बन्धुओं को आश्वासन प्रदान कर।

संसार की ऐसी ही विचित्र लीला है कि जो अपनी पुत्री हो, वह माता बन जाती है; पिता हो, वह पुत्र हो जाता है; मालिक, सेवक हो जाता है और सेवक, मालिक बन जाता है; पुत्रवधू, पुत्री बन जाती है; माता, पुत्री बन जाती है; धनवान, निर्धन और निर्धन, धनवान बन जाता है; बहिन-पुत्री-माता हों, वे स्त्री बन जाती हैं और स्त्री हो, वह बहिन-पुत्री-माता बन जाती है! यह सब कर्म की विचित्रता है - ऐसा जानकर बुद्धिमानों को हर्ष तथा शोक नहीं करना चाहिए। इसलिए अब इन सबको सुखप्रदायक और संसार के भय को नष्ट करनेवाला एक धर्म ही करना चाहिए, जिससे अन्य जन्म में कर्म के फल से उत्पन्न होनेवाला और बन्धुओं का वियोग करनेवाला भयंकर दुःख फिर से न भोगना पड़े।'

श्री सात्विकी मुनिराज के वचन सुनकर वह मूक ब्राह्मण गद्गद होकर बोला—'हे भगवान! मुझे संसार समुद्र से पार करनेवाली जिनदीक्षा शीघ्र प्रदान करें। मुझे इस असार संसार के बन्धुजन, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन-धान्यादि से कुछ प्रयोजन नहीं है। हे भगवन! मैंने भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि यह असार संसार तृण के समान त्यागने योग्य है, इसलिए जिससे भववास समाप्त हो जाये, ऐसी जिनदीक्षा मुझे प्रदान करो।'

सात्विकी मुनिराज ने बोलते हुए मूक ब्राह्मण को दीक्षा

अंगीकार करने में तत्पर जानकर कहा—'हे वत्स! पहले तू अपने माता-पिता से और कुटुम्बीजनों से मिलकर उनकी आज्ञा लेकर आ, फिर तुझे दीक्षा प्राप्त होगी।'

मुनिराज के वचनों का उल्लंघन करना उचित नहीं है—ऐसा विचारकर वह मूक ब्राह्मण शीघ्र ही अपने घर गया और कुटुम्बियों से मिलकर बोलने लगा। उसे बोलते देखकर उसके माता-पिता रोते-रोते बोले कि—'बेटा! तू किसके बहकावे में आकर आज तक बोलता नहीं था?' तब उसने कहा कि—'पूर्व में मैंने अनेक अशुभकर्म किये थे, इसलिए मैं मरकर अपने पुत्र का ही पुत्र हुए हूँ। जातिस्मरण से जब मुझे ज्ञात हुआ कि मैं अपने ही पुत्र का पुत्र हुआ हूँ तो लज्जावश कि मैं अपने पुत्र को पिता और पुत्रवधू को माता किस प्रकार कहूँगा - ऐसा विचारकर चुप हो गया था। अब मैं संसार का नाश करनेवाली जिनदीक्षा धारण करूँगा क्योंकि जब तक यह प्राणी संसार के जाल में फँसा हुआ रहता है, तब तक अनेक प्रकार के सुख-दुःख, उच्च-नीच पद को प्राप्त करता रहता है। यह जीव अकेला ही अपने उपार्जित किये हुए पुण्य-पाप अनुसार सुख-दुःख प्राप्त करता है; अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मरता है - ऐसा जानकर संसार का कारणभूत मोह कभी भी नहीं करना चाहिए। इसलिए मैं अपने आत्मकल्याण के लिये वीतराग दिगम्बर जिनदीक्षा ग्रहण करूँगा।' ऐसा कहकर उस प्रवर पौत्र ने सबसे क्षमायाचना की और सबको क्षमा करके वहाँ से वन की ओर गमन कर दिया।

वन में आकर उस प्रवर पौत्र ने मुनिराज को नमस्कार किया। अणुव्रत अंगीकार करके मुनिराज के निकट बैठ गया। उसे देखकर

तथा उसके भव सुनकर कितने ही जीवों को वैराग्य हो गया, कितने ही जीवों ने गृहीत मिथ्यात्व का त्याग किया, कितने ही जीवों ने अणुव्रत धारण किये। जो लोग मुनिराज के वचन सुनकर प्रवर पौत्र के घर भातड़ी देखने गये थे, वे उस भातड़ी को देखकर आ गये। जिससे सबको उस पर दृढ़ श्रद्धा हो गयी। यह देखकर द्विजपुत्र—अग्निभूति और वायुभूति का मान गल गया। सब लोगों ने उन्हें धिक्कारा, तब वे अपना मुख छुपाते हुए घर की ओर चले गये।

❖ ❖ ❖

जब द्विजपुत्रों के माता-पिता ने उन्हें पराजित होकर आते हुए देखा, तब उन्होंने दोनों पर बहुत क्रोध किया, बहुत यद्वा-तद्वा कह सुनाया। उन्होंने कहा—'पराजित होकर हमें अपना मुख दिखाने क्यों आये? या तो तुम्हें डूब मर जाना था अथवा तो उस दिगम्बरी को मार डालना था।' माता-पिता के ऐसे वचन सुनकर दोनों भाई अपनी तलवार लेकर निकल गये और रात होने का इन्तजार करने लगे।

❖ ❖ ❖

इस ओर द्विजपुत्रों को वाद में पराजित करने के बाद सात्विकी मुनिराज अपने आचार्य के निकट आये और वाद-विवाद सम्बन्धी समस्त वास्तविकता कहकर प्रायश्चित्त

किया। तब नन्दीवर्धन मुनिराज ने उन्हें कहा कि—'संघ पर संकट आ सकता है, इसलिए जिस जगह तुमने वाद किया है, उसी जगह आज की रात्रि व्यतीत करना चाहिए।' सात्विकी मुनिराज ने आचार्यश्री को प्रणाम किया और अपने वाद के स्थल पर पहुँचकर आत्मध्यान में विराजमान हो गये।

नन्दीवर्धन महामुनिराज ने प्रवर पौत्र को जिनदीक्षा प्रदान की, क्योंकि आचार्य समीप में विद्यमान होने से शिष्य दीक्षा नहीं दे सकता।

❖ ❖ ❖

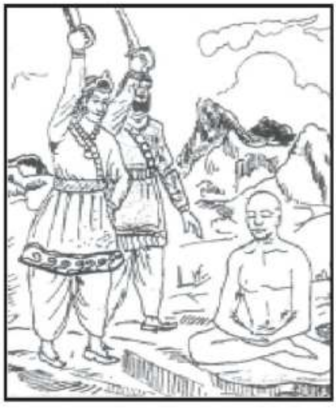

रात्रि होते ही दोनों द्विजपुत्र तलवार लेकर जहाँ वाद-विवाद हुआ था, उसी स्थल पर आ पहुँचे और सात्विकी मुनिराज को देखते ही क्रोध से भरकर दोनों भाई एक साथ तलवार उठाकर जहाँ मुनिराज को मारने हेतु उद्यत हुए, उसी समय उस स्थान का रक्षक यक्षराज ऊपर से निकल रहा था, उसने मुनिराज की हत्या होते देखकर क्रोध से भरकर उन दोनों भाईयों को उठी हुई तलवार के साथ ही ज्यों का त्यों कीलित कर दिया और विचार किया कि प्रात:काल सभी लोगों के समक्ष इन दोनों भाईयों को मार दूँगा क्योंकि अभी इन दोनों को मारूँगा तो लोगों को ऐसा लगेगा कि मुनिराज ने दोनों भाईयों का वध किया है। ऐसा विचार कर उन दोनों भाईयों को रात्रि में न मारकर मात्र कीलित कर दिया।

❖ ❖ ❖

प्रात:काल होते ही लोग मुनिराज के दर्शनार्थ आने लगे और वहाँ का दृश्य देखते ही सबको आश्चर्य के साथ अत्यन्त दु:ख भी हुआ। यह वार्ता सम्पूर्ण नगर में व्याप्त हो जाने से नगर के सभी नर–नारी वन में एकत्रित हो गये। राजा भी यह समाचार सुनते ही वहाँ आ पहुँचा। सोमशर्मा और अग्निला भी समाचार प्राप्त होते ही दु:खी हृदय से उस वन में पहुँच गये और मुनिराज के चरणों में गिरकर अपने पुत्रों को अभयदान देने के लिये प्रार्थना करने लगे।

उसी समय मुनिराज का ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होंने दोनों भाईयों की स्थिति देखकर उनके प्रति किंचित् भी द्वेष अथवा क्रोध किये बिना उन्होंने कहा कि—'जिस दयालु यक्षराज ने यह चमत्कार किया है, वह सामने प्रगट हो और इन दोनों भाईयों को मुक्त करे।'

मुनिराज के वचन सुनकर, उनकी आज्ञानुसार यक्षराज प्रगट हुआ और उसने मुनिराज को प्रणाम करके रात्रिकालीन सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाते हुए कहा—'हे भगवान! आप इस ओर ध्यान न दें और मुझे मेरा कार्य करने दें' – ऐसा कहकर जहाँ यक्षराज उन दोनों भाईयों को मारने हेतु उद्यत हुआ, तब मुनिराज ने कहा— 'हे यक्षराज! सुन! बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथस्वामी के वंश में श्रीकृष्ण नारायण के ये दोनों पुत्र होकर उसी भव से मोक्ष जायेंगे; इसलिए तू इन दोनों को मुक्त कर।'

भविष्य में सिद्ध होनेवाले होने से इन दोनों भाईयों को मुक्त करके, मुनिराज को प्रणाम करके, यक्षराज अदृश्य हो गया। यह सब चमत्कार देखकर राजा और प्रजा, सबको जैनधर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा हो गयी।

बन्धन से मुक्त होते ही दोनों द्विजपुत्र, मुनिराजश्री के चरणों में गिरकर बोले—'हे प्रभो! हमने घोर अपराध किया है, हमें क्षमा करो।' तब अत्यन्त करुणावन्त मुनिराज ने कहा—'हे भव्य हमने तो पहले से ही क्षमा धारण की हुई है। संसार में यह जीव अपने कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता है; जिसने जिसे पूर्व में दुःख दिया है, वह उसे दूसरे भव में दुःख देगा। जिसने जिसका पूर्व में उपकार किया होगा, वह उसका दूसरे भव में उपकार करेगा। पूर्व भव में जो कर्म बाँधे होंगे, वे ही सुख-दुःख, लाभ-अलाभ तथा जय-पराजय के कारणभूत होते हैं—ऐसा जानकर किसी भी प्रकार से द्वेष नहीं करना चाहिए। पुत्रों! तुमने मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं किया है, इसलिए तुम रंचमात्र भी चिन्ता मत करो।'

मुनिराज के वचनामृत का पान करते ही दोनों भाई वैराग्य से भूषित हो गये और उन्होंने कहा—'हे दया सागर! हमारी एक प्रार्थना है, वह यह कि आप धर्म के दृढ़ स्तम्भ हैं और आपका शरीर धर्मसाधन तथा आत्मकल्याण का साधनभूत है, तथापि हमने दुर्बुद्धि से आपके ऐसे पूज्य शरीर को नष्ट करने का प्रयत्न किया है, जिसका वज्रपाप ऐसा बँधा होगा, इसमें सन्देह नहीं है; इसलिए हमें ऐसा कोई व्रत बतलायें, कि जिसके पुण्योदय से यह हमारा कर्मबन्धन शिथिल हो जाये।'

सात्विकी मुनिराज ने धर्म का स्वरूप समझाते हुए कहा—'हे पुत्रो! रत्नत्रयरूप धर्म में प्रधानभूत सम्यग्दर्शन मुख्य है। तत्पश्चात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह - ये पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत -

ऐसे श्रावकों को पालन योग्य धर्म बारह प्रकार का है। इसके अतिरिक्त रात्रिभोजन त्याग और दिवस मैथुन त्याग करना चाहिए। प्रतिदिन देव-पूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान करना चाहिए। मद्य, माँस और मधु का त्याग करना चाहिए। अचार (अथाणा) तथा कन्दमूल नहीं खाना चाहिए। बुद्धिमानों को सदाकाल परोपकार करना चाहिए और कभी भी परनिन्दा नहीं करना चाहिए। उत्तम क्षमादि दस धर्मों का पालन करना चाहिए।'

मुनिराज के श्रीमुख से धर्म का स्वरूप सुनकर अग्निभूति और वायुभूति दोनों भाईयों ने अपने माता-पिता सहित भक्तिपूर्वक गृहस्थ धर्म धारण किया। गृहीतमिथ्यात्व का त्याग करके सम्यक्त्व को प्राप्त किया। अब वे दोनों भाई अपने माता-पिता सहित अति प्रसन्न हुए। सत्य ही है कि धर्मरूपी रत्न को प्राप्त करके किसका चित्त सन्तुष्ट नहीं होता! जो अमृतपान करता है, उसे सन्तोष होता ही है।

वे द्विजपुत्र-जिनकी कितने ही लोग प्रशंसा करते थे और कितने ही निन्दा करते थे, वे श्री सात्विकी मुनिराज को नमस्कार करके अपने घर चले गये। वे अब अपने चित्त को धर्म में ही लीन रखने लगे। जिन चैत्यालयों में जिनधर्म के महान उत्सव कराना और गुरु-वन्दना में ये दोनों भाई नगरजनों में प्रमुख गिने जाने लगे। इस प्रकार इन दोनों भाईयों ने तो अपना चित्त धर्मध्यान में लगा दिया, परन्तु मिथ्यात्व के योग से कुछ ही दिनों में उनके माता-पिता जैनधर्म से विमुख हो गये।

एक दिन उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और कहा—

'बेटा! तुम्हें वेदमार्ग से विपरीत जिनधर्म के व्रतादिक पालन करना उचित नहीं है। उस समय ऐसा अवसर आ गया था कि जिनधर्म अंगीकार करना पड़ा था, परन्तु अब अपना कार्य तो सिद्ध हो गया है, इसलिए वेद शास्त्र से विरुद्ध धर्म पालन करने की आवश्यकता नहीं है, जिससे कि प्राणियों की नीच गति होती है।'

अग्निभूति और वायुभूति अपने माता-पिता की बात सुनकर चुप रहे, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों भाई समझ गये कि माता-पिता की रुचि अभी कुधर्म में लग रही है, इसलिए उन्होंने माता-पिता की बात पर ध्यान नहीं दिया और जैनधर्म का दृढ़रूप से पालन करते रहे। अन्त में समाधिमरण करके स्वर्ग में जन्म धारण किया।

❖ ❖ ❖

भरतक्षेत्र के कौशल देश में अयोध्या नामक एक नगरी है। जिसका राजा अरिंजय था। उस राजा के प्रियम्वदा नामक गुणवती रानी इतनी प्रिय थी, जैसी इन्द्र को शचि और चन्द्र को रोहिणी!

उसी नगर में एक सम्यग्दृष्टि श्रावक समुद्रदत्त नामक सेठ रहता था। उसकी धारिणी नामक गुणवती सेठानी थी। कितने ही समय पश्चात् उन्हें पूर्व के अग्निभूति-वायुभूति जो स्वर्ग में इन्द्र-उपेन्द्र हुए थे, उन्होंने इस सेठानी के गर्भ से जन्म धारण किया। पुत्रों के जन्म की खुशहाली में सेठ ने उत्सव कराया और गरीबों को दान दिया। छह दिन तक उत्सव चला, सातवें दिन सगे-सम्बन्धियों को बुलाकर विधिपूर्वक एक पुत्र का नाम मणिभद्र और दूसरे का नाम पूर्णभद्र रखा गया। जब वे दोनों पाँच वर्ष के

हुए, तब सेठ ने उन्हें पाठशाला में विद्याभ्यास के लिये प्रवेश दिलाया। जब वे अनेक शास्त्र, पुराण, ग्रन्थ सीखकर विद्या कला में प्रवीण हो गये और सोलह वर्ष के हुए, तब पिता ने उन्हें युवा जानकर योग्य कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। धर्म, अर्थ और काम - इन तीन पुरुषार्थों का सेवन करते हुए कितना ही समय व्यतीत हो गया, इसका उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहा।

कुछ दिन पश्चात् निकट के प्रमद नामक उद्यान में महेन्द्रसूरि नामक मुनिराज का पदार्पण हुआ। उनके साथ मुनिसंघ भी था। मुनिसंघ के पधारने से उद्यान की परिवर्तित हुई शोभा को देखकर वहाँ का रक्षक माली समस्त ऋतुओं के फल लेकर राजा अरिंजय के निकट गया और राजा को मुनिराज के वन में पधारने सम्बन्धी समाचार प्रदान किये। राजा ने राज्य सिंहासन से उठकर सात कदम आगे चलकर मुनिराज को परोक्ष प्रणाम किया और माली को भेंट प्रदान करके नगर में मुनिराज के पधारने की घोषणा करवा दी। तत्पश्चात् नगरवासियों सहित राजा प्रमद उद्यान में पहुँचा और सब मुनिराज को नमस्कार करके वहीं बैठ गये।

सभी लोग यथायोग्य स्थान पर बैठ जाने के पश्चात् राजा अरिंजय ने प्रश्न किया —'हे स्वामी! आज तक यह जीव अनेक तीर्थंकरों के समवसरण में गया, भगवान की वाणी सुनी और ऐसा होने पर भी किस कारण से संसार से पार नहीं हुआ?'

मुनिराज ने कहा—'हे भव्योतम! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। इस जीव ने अनेक बार तीर्थंकर का उपदेश सुना परन्तु अनादि-अभ्यास के कारण उनकी वाणी में से मात्र कर्तृत्व का ही उपदेश ग्रहण किया है। यह व्रत पालूँ, ऐसा तप-आचरण

करूँ—इत्यादि व्रतरूप शुभभाव को ही धर्म मानकर उसमें लगा रहा परन्तु अपने ज्ञानस्वभाव को पहिचानने का किंचित् भी प्रयत्न नहीं किया और इसीलिए आज तक संसार में भटक रहा है। अनादि से संसार में भटकते-भटकते मोह के वश होकर, जिनके साथ आत्मा को किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, उन परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके राग-द्वेष करते हुए नये-नये कर्म बाँधता है और संसार बढ़ाता जाता है।'

मुनिराज के श्रीमुख से प्रवाहित दिव्य देशना को सुनकर राजा अरिंजय ने विनयपूर्वक फिर से पूछा—'हे जगत उद्धारक! उस ज्ञानस्वभाव का वर्णन करो कि जिसे पहिचाने बिना मैं आज तक संसार के दु:ख भोग रहा हूँ।'

मुनिराज ने कहा—'**हे निकट भव्य! सुन! आत्मा ज्ञान का भण्डार है। ज्ञान जानने का कार्य करता है परन्तु अनादि से अज्ञानी जीव, पर को जानने में अपना उपयोग लगाता है और अपने को जानने का कार्य नहीं करता। अज्ञानी ऐसा मानता है कि परद्रव्य मेरा ज्ञेय और मैं उसका ज्ञाता, परन्तु ज्ञान का स्वभाव पर को जानने का है ही नहीं, ज्ञान तो मात्र स्व को ही जानता है।**

जिस प्रकार आँख जिस किसी पदार्थ को देखती है, वह वास्तव में परपदार्थ को नहीं देखती परन्तु स्वयं में जो पर के

आकार की रचना-आँख की अपनी शक्ति से होती है, उस आकार को ही देखती है और वास्तव में तो आँख उस अपनी शक्ति को ही-आँख को ही देखती है।

जिस प्रकार दर्पण में अग्नि दिखती है तो उस दर्पण में अग्नि आ नहीं जाती परन्तु दर्पण में दिखनेवाली अग्नि उस दर्पण की अपनी स्वच्छता ही है, दर्पण का अपना स्वच्छ स्वभाव ही उसमें प्रसिद्ध होता है।

जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश है, वह घट-पट आदि पदार्थों को प्रसिद्ध नहीं करता परन्तु वह प्रकाश है, वह अपने आधारभूत सूर्य को ही प्रसिद्ध करता है, क्योंकि जो जिसमें से उत्पन्न होता है, जो जिसका होता है, वह उसे ही प्रसिद्ध करता है, पर को नहीं।

इसी प्रकार ज्ञान है, वह जानने का कार्य करता है। ज्ञान स्व को ही जानने का कार्य करता है। ज्ञान की एक समय की वर्तमान पर्याय में जैसे आकार होते हैं, उन्हें ज्ञान मात्र जानता ही है और वह आकार ज्ञान का अपना ही है, परद्रव्य का नहीं। वास्तव में तो ज्ञान, उस ज्ञानाकार को ही जानता हुआ, अपने ज्ञायकस्वभाव की ही प्रसिद्धि करता है, क्योंकि जो जिसमें से उत्पन्न होता है - जो जिसका होता है, वह उसे ही प्रसिद्ध करता है - अपने स्वभाव को ही प्रसिद्ध करता है, अन्य को नहीं।

अरे! ज्ञानस्वभाव के अधिक निकट जाकर ज्ञानपर्याय के षट्कारकों से देखें तो एक समय की ज्ञान की पर्याय उस द्रव्य को भी नहीं जानती परन्तु अपने में, अपने से, अपने को ही, जैसा द्रव्य है वैसा आकार होता है, उसे ही अर्थात् एक समय की ज्ञान की पर्याय स्वज्ञेयाकाररूप उस पर्याय को ही जानती

हुई स्वज्ञेय की ही प्रसिद्धि करती होने से जब जीव ऐसा मानता है - श्रद्धा करता है कि मैं वह एक समय की पर्याय नहीं, परन्तु मैं तो अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय परमपारिणामिकभाव मात्र हूँ, तब वही ज्ञान, ज्ञान में समाहित हो जाता है और निर्विकल्प अनुभूति होकर मोक्षमार्ग की शुरुआत हो जाती है। निर्विकल्प अनुभूति होते ही आत्मा अकर्ता - ज्ञाता हो जाता है। आत्मा, परद्रव्य से लेकर अपने ज्ञान की एक समय की पर्याय का भी अकर्ता-ज्ञाता हो जाने से, उसे अब मुक्त होना नहीं परन्तु वह मुक्तस्वरूप ही है!'

मुनिराज के श्रीमुख से अपने ज्ञानस्वभाव की ऐसी महिमा सुनते ही राजा को ज्ञान हुआ, अपनी महिमा आयी और संसार-शरीर-भोग से मन उदास हो गया और शीघ्र ही मुनिराज के निकट जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। मुनिराज का उपदेश सुनकर तथा राजा की जिनदीक्षा का प्रसंग देखकर समुद्र सेठ को भी संसार से वैराग्य हो गया और उन्होंने भी वहीं जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। सेठ के दोनों पुत्रों ने भी मुनिराज के समक्ष यथाशक्ति गृहस्थधर्म-श्रावकधर्म अंगीकार किया।

❖ ❖ ❖

कुछ समय पश्चात् एक बार पुनः मुनिराज वन में पधारे। उनके दर्शन करने के लिये दोनों भाई वन में जा रहे थे, वहाँ मार्ग में एक कुरूप चाण्डाल और उसके साथ एक कुतिया उन्होंने देखी। उन्हें देखते ही उन दोनों भाईयों को उनके प्रति प्रेम जागृत हुआ। इन दोनों भाईयों को देखकर उन चाण्डाल और कुतिया को भी मन में साता उत्पन्न हुई और इनके लिये राग बँधा। ये दोनों भाई तो मुनिराज की वन्दना के लिये आगे चले गये और

उनके पीछे-पीछे चाण्डाल और कुतिया भी चलने लगे।

मुनिराज के निकट पहुँचकर दोनों भाईयों ने उन्हें विधिपूर्वक नमस्कार किया और चरणों के निकट स्थित हो गये। चाण्डाल और कुतिया भी मुनिराज के दर्शन करके उनके बाजू में बैठ गये। दोनों भाईयों ने विनयपूर्वक मुनिराज से पूछा—'हे महाराज! इस चाण्डाल और कुतिया से हमें इतना मोह क्यों उत्पन्न होता है, वह कृपा कर बतलाने का अनुग्रह करें।'

मुनिराज ने कहा—'हे वत्स! पूर्व के तीसरे भव में यह चाण्डाल, ब्राह्मण था और यह कुतिया उसकी पत्नी थी तथा तुम दोनों उनके पुत्र थे। किसी कारणवश जैनधर्म मिलने पर भी ब्राह्मण और उसकी स्त्री ने उस जैनधर्म का त्याग किया और अपने धर्म को धारण कर अनेक प्रकार के हवन किये और बहुत जीव हिंसा की। जिससे पहले नरक में दोनों पाँच पल्य की आयुरूप से रहे। वहाँ की अनन्त पीड़ा सहन करके ब्राह्मण का जीव चाण्डाल हुआ और उसकी पत्नी यह कुतिया हुई है। तुम दोनों ने पूर्व में भलीभाँति जिनधर्म का पालन किया था, इसलिए तुम दोनों स्वर्ग में गये और वहाँ से सेठ के घर में जन्म हुआ। इस प्रकार पूर्व के सम्बन्ध के कारण तुम चारों को एक दूसरे के प्रति मोह उत्पन्न हुआ है।'

मुनिराज के समक्ष अपने पूर्व भव सुनते ही उस चाण्डाल और कुतिया को जातिस्मरण हो गया और नरक के दुःख स्मरण में आते ही वे भयभीत हो गये। दोनों ने मुनिराज के निकट व्रत ग्रहण किये और दोनों भाईयों ने अपने व्रत को अधिक दृढ़ करके मुनिराज को नमस्कार करके अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

चाण्डाल थोड़े ही दिन में समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हुआ। कुतिया भी व्रत का दृढ़ता से पालन करके अन्त में समाधिपूर्वक देह का विसर्जन करके उस नगर के राजा की पुत्री हुई। जब वह कन्या विवाह योग्य हुई, तब उसका स्वयंवर रचा गया। उसी समय पूर्व भव का चाण्डाल स्वर्ग में से आया और उस कन्या का स्वयंवर मण्डप देखकर, पूर्व की अपनी पत्नी को संसार में प्रवेश करते हुए देखकर स्वयं अदृश्य रहकर ही उसे उसके पूर्व भव कुतिया, नरक स्मरण कराये। राजपुत्री को अपने पूर्व भव स्मरण में आते ही वह स्वयंवर मण्डप छोड़कर सीधे वन में गयी और श्रीयुत मुनिराज के निकट दीक्षा अंगीकार कर ली। बहुत समय तक घोर तप किया और स्त्री लिंग का छेद करके स्वर्ग में देव हुई। वे दोनों सेठ के पुत्र भी संन्यासपूर्वक देह का त्याग करके पहले स्वर्ग में देव हुए।

स्वर्ग में बहुत समय तक सुख भोगकर, वहाँ से चयकर कौशल देश के राजा पद्मनाभ की रानी के गर्भ में आये। जब दोनों का जन्म हुआ, तब राजा ने प्रथम पुत्र का नाम मधु और दूसरे का नाम कैटभ रखा। दोनों कुमार पढ़कर युवक हुए, तब राजा ने उन दोनों के योग्य कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया।

समस्त उत्तरदायित्वों से निवृत्त होकर एक दिन राजा पद्मनाभ विचार करने लगा कि प्रथम तो मनुष्य जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुल, राज–सुख, पराक्रम आदि अति दुर्लभ है, उसमें भी जैनधर्म का प्राप्त होना अति–अति कठिन है परन्तु पुण्योदय से मुझे यह सब सामग्री प्राप्त हुई है। अब मुझे इस मनुष्य भव का सदुपयोग करने के लिये जिनदीक्षा धारण करना

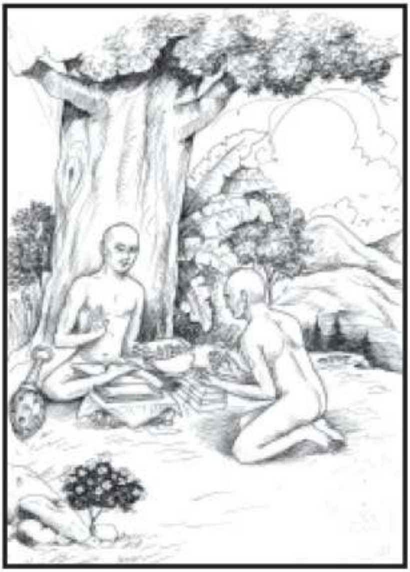

चाहिए। राजा के हृदय में इस प्रकार के विचारों के कारण वैराग्य ने जोर पकड़ा। राजा ने अपने मन्त्रियों और नगरवासियों की उपस्थिति में अपने बड़े पुत्र मधु का राज्याभिषेक किया और कैटभ को युवराज पद प्रदान किया तथा स्वयं हजारों रानियों और राज्य का त्याग करके, वन में जाकर मुनिराज के निकट अनेक राजाओं और राजपुत्रोंसहित जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

राजा मधु और युवराज कैटभ अपने कुलक्रम से चले आ रहे राज्य को प्रजा के सुख शान्ति को लक्ष्य में रखकर संचालित करते थे। एक दिन राजा मधु सभा में अपने सामन्तों सहित बैठे हुए थे, तब सभा के बाहर नगर में कोलाहल की आवाज सुनकर राजा ने द्वारपाल से पूछा कि यह कैसा कोलाहल है? ऐसा कोलाहल मैंने कभी सुना नहीं है।

द्वारपाल ने विनयपूर्वक नमस्कार करके कहा—'राजन! एक दुष्ट राजा अपनी सेना और मजबूत किले के जोर से प्रतिदिन नगर में आकर लूट मचाता है और जब तक अपनी सेना उसे पकड़ने जाती है, वहाँ वह शीघ्र भागकर अपने नगर में छिप जाता है। इस प्रकार उससे डरकर प्रजाजन अपने प्राणों की रक्षा के लिये व्याकुल होते हुए ऐसा कोलाहल कर रहे हैं।'

द्वारपाल के मुख से कोलाहल का कारण सुनकर राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ और मन्त्रियों से पूछा—'आज तक मुझे इस बात की जानकारी क्यों नहीं दी गयी?' तब मन्त्री ने कहा—'राजन! तब आपकी उम्र छोटी थी और वह अपने किले के जोर से अनेक राजाओं से भी जीता नहीं जा सका, इसलिए यह बात आज तक आपको नहीं बतलायी गयी।'

मन्त्री के वचन सुनकर राजा बोला—'क्या सूर्य का उदय होने से ही रात्रि के अन्धकार का नाश नहीं होता?! इसी प्रकार मेरी छोटी उम्र थी तो क्या हुआ? तुमने मुझे यह समाचार न देकर मूर्खता की है। अब शीघ्र ही अपनी पूरी सेना तैयार करो और युद्ध के लिये तत्पर होओ; मैं अभी ही उसके किले को तोड़कर उसे यमलोक पहुँचा देता हूँ।'

मन्त्रियों ने राजा की आज्ञानुसार सेना तैयार की। राजा अपनी सेना के साथ दुश्मन पर चढ़ाई करने के लिये निकल पड़ा। मार्ग में वटपुर के राजा हेमरथ को ज्ञात हुआ कि राजा मधु यहाँ से निकले हैं, तो तुरन्त ही हेमरथ ने हृदय से राजा मधु को अपने यहाँ एक दिन ठहरने का आमन्त्रण प्रदान किया। राजा मधु ने उससे प्रसन्न होकर उसे स्वीकार किया। राजा हेमरथ, राजा मधु को अपने महल में ले गया और रत्न का चौक पुराकर स्वर्ण के सिंहासन पर उन्हें बैठाया।

तत्पश्चात् राजा हेमरथ अपनी प्रिय रानी चन्द्रप्रभा के निकट गया और कहा—'हे प्रिये! तुम स्वयं जाकर राजा मधु के सत्कार में उनकी मंगल आरती उतारो।'

विनयपूर्वक रानी चन्द्रप्रभा ने कहा—'हे नाथ! ऐसी नीति है

कि जो अपनी मनोहर वस्तु होती है, वह अन्य राजाओं को नहीं दिखाना चाहिए क्योंकि उसे देखकर राजाओं का चित्त चलायमान हो जाता है; इसलिए आप अपनी दूसरी किसी रानी को भेजो, यह काम मुझसे मत कराओ।'

राजा हेमरथ ने कहा—'हे देवी! तू बहुत भोली है, उसके यहाँ तुम्हारे समान रूपवान सैकड़ों दासियाँ हैं; इसलिए हे शुभमुखे! तुम्हारे पर वह रंचमात्र भी पापदृष्टि नहीं करेगा। तू अपने मन के शल्य को दूर कर और मेरे साथ चलकर राजा मधु की आरती उतारकर उनका सम्मान कर।'

अपने स्वामी का अत्यन्त आग्रह देखकर रानी चन्द्रप्रभा ने एक स्वर्ण के थाल में उत्तमोत्तम मनोहर मोती रखे और दूध, अक्षत आदि मांगलिक द्रव्य भी उसमें रखे और राजा हेमरथ की आज्ञा से सोलह शृंगार करके रानी ने तन्दुल, मोती आदि से महाविनय और भक्ति से राजा मधु की आरती की।

राजा मधु अपने समक्ष खड़ी हुई सर्वांग सुन्दर, मनोहर रानी चन्द्रप्रभा को देखकर कामबाण से घायल हो गया। वह मन में विचार करने लगा कि यह इन्द्राणी है या पार्वती है? रोहिणी है या साक्षात् रति है? यह कौन है? इसका सर्वांग सुन्दर शरीर मुझे कामबाण से घायल कर रहा है। वह विचार करता है कि इस धरती पर वही कृतकृत्य है और उसके ही पूर्व भव के पुण्य का प्रबल उदय है जिसकी यह मनोहर सुन्दरी प्राण बल्लभा है! राजा मधु जब इस प्रकार चिन्तातुर था, उसी समय चन्द्रप्रभा उसकी आरती करके अपने महल की ओर प्रस्थान कर गयी परन्तु साथ ही साथ राजा मधु का चित्त चुराकर ले गयी।

राजा मधु के चेहरे के हावभाव से उसका एक मन्त्री समझ गया कि राजा को कोई गुप्त बात सता रही है; इसीलिए वह एकान्त के समय में राजा के निकट गया और कहा—'हे राजन! आप बहुत समय से चिन्तित दिखाई देते हो। यदि तुम्हें शत्रु की ओर से चिन्ता हो तो आप उस चिन्ता का परित्याग दो। उस शत्रु को तो मैं देखते-देखते ही मार डालूँगा।'

मन्त्री के वचन सुनकर राजा मधु ने कहा—'मन्त्रीवर! मुझे शत्रु की जरा भी चिन्ता नहीं है। मेरी चिन्ता का कारण मैं तुम्हें बताता हूँ, उसे गुप्त रखना और उसका उपाय खोजना। बात यह है कि जब से मैंने इस चन्द्रप्रभा रानी को देखा है, तब से मैं कामबाण से घायल हुआ हूँ। जब तक मैं उससे मिलूँगा नहीं, तब तक मुझे शान्ति मिलनेवाली नहीं है।'

राजा की बात सुनकर मन्त्री ने कहा—'हे स्वामी! यह आपने सर्वथा अनुचित बात की है। यह कार्य तो इसलोक और परलोक दोनों को बिगाड़नेवाला है और निन्दनीय है। यह सुनते ही जगत में आपका अपयश व्याप्त हो जायेगा। नीति का वाक्य है कि लोकनिन्दित कार्य को मन से भी विचार नहीं करना चाहिए।'

मन्त्री के वचन सुनकर राजा ने कहा—'हे मन्त्री! बात तो तुम्हारी सत्य ही है, परन्तु चन्द्रप्रभा के बिना मेरा जीवन अशक्य हो गया है। यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो किसी भी प्रकार से उसका उपाय करो कि चन्द्रप्रभा मुझे शीघ्र मिले।'

जब मन्त्री को लगा कि राजा का चित्त चन्द्रप्रभा में ही लग गया है, तब उसने महाराज को बहुत धैर्य से समझाया कि—'महाराज! अभी अपने प्रेम को अपने मन में ही रहने दो। यदि

दूसरे माण्डलिक राजाओं को ज्ञात होगा कि आप परस्त्री में आसक्त हुए हैं तो वे अभी ही अपने को छोड़कर वापिस घर चले जायेंगे और अपना युद्ध का कार्य अधूरा रह जायेगा। इसलिए पहले माण्डलिक राजाओं की सहायता से युद्ध में शत्रु को पराजित कर लें, पश्चात् अवश्य आपकी इच्छा पूरी होगी।' इस प्रकार राजा को सन्तोष दिलाने के लिये मन्त्री ने उन्हें वचन दिया।

मन्त्री के मनोहर वचन सुनकर राजा मधु स्वस्थ चित्त होकर शत्रु को परास्त करने की उत्कण्ठा से सर्व सेना सहित रवाना होने के लिये तैयार हो गया। मन्त्री के आग्रह से राजा हेमरथ भी अपनी समस्त सेना सहित वटपुर से निकल पड़ा। रात्रि होने पर राजा मधु ने शत्रु के सम्पूर्ण नगर को चारों ओर से घेर लिया। जब राजा भीम को समाचार ज्ञात हुए कि मेरा नगर घेर लिया गया है, तब वह अत्यन्त क्रोधित होकर अपनी समस्त सेना सहित युद्ध करने के लिये उद्धत हाथी की भाँति नगर के किले से बाहर निकला और राजा मधु के साथ महा भयंकर युद्ध किया। युद्ध के अन्त में राजा मधु ने मित्र राजाओं की सहायता से भीम को पराजित कर जीवित पकड़ लिया और उसके राज्य में अपने सामन्तों को स्थापित कर भीम राजा को अन्यत्र स्थापित कर दिया।

अयोध्या की ओर वापस मुड़ते समय राजा मधु ने अपने मन्त्री को एकान्त में बुलाकर रानी चन्द्रप्रभा की बात स्मरण कराते हुए कहा कि—'अब हम अवश्य वटपुर जायेंगे और वहाँ जाकर चन्द्रप्रभा से मिलेंगे।' राजा की बात सुनकर मन्त्री चिन्ता में पड़ गया। उसने राजा को पुनः मिथ्या आश्वासन दिया। जिससे

राजा निश्चिन्त हो गया। मन्त्री ने सेनापति को एकान्त में बुलाया और कहा कि—'रात्रि के अन्धकार में वटपुर को बहुत दूर से ही छोड़कर सीधे अयोध्या का रास्ता लेना और सबेरे जब महाराज पूछे तो कहना कि अन्धकार में मार्ग भूल गया।'

सेनापति ने मन्त्री के कहे अनुसार ही सब कुछ किया। प्रात:काल होते ही महाराज अयोध्या पहुँच गये। अयोध्या नगरी का शृंगार किया गया। राजा को जब ज्ञात हुआ कि मन्त्री ने मेरे साथ कपट किया है, तब उन्होंने मन्त्री को बुलाया और अत्यन्त क्रोधित होकर कहा कि मेरे साथ ऐसी मायाचारी क्यों की? तब मन्त्री ने सेनापति को बुलाकर पूछा कि वटपुर का रास्ता क्यों छोड़ दिया? तब हाथ जोड़कर डरते-डरते सेनापति बोला—'हे राजन! क्षमा करें! रात्रि के अन्धकार में मार्ग भूल गया और भूल से दूसरे मार्ग में आ गया। अनजाने में भूल हुई होने से क्षमा प्रदान करें!' सेनापति के वचन सुनकर राजा मधु चुप हो गया और नगर में प्रवेश करके अपने महल में पहुँच गया।

❖ ❖ ❖

एक ओर राजा मधु को चन्द्रप्रभा के बिना चैन नहीं पड़ता है और दूसरे मन्त्रियों ने भी राजा से मिलना छोड़ दिया था, क्योंकि वे जानते थे कि राजा अपने सामने चन्द्रप्रभा के ही गीत गायेगा। राजा का शरीर चन्द्रप्रभा के वियोग से दुर्बल हो गया और कामज्वर से पीड़ित होने लगा। राजा मधु ने खाना-पीना त्याग दिया। राजा की ऐसी स्थिति के समाचार सुनकर प्रमुख मन्त्री उनके निकट आया और नमस्कार करके कहा—'हे प्रभो! आप यह क्या करते हो? मुझे ऐसा लगा था कि आप घर वापिस आकर रानी

चन्द्रप्रभा को भूल जायेंगे, इसलिए मैं कुछ प्रयत्न नहीं कर रहा था परन्तु आपकी दशा देखकर मैं निश्चय से कहता हूँ कि थोड़े ही समय में आपकी प्राणप्रिया आपके निकट होगी।' मन्त्री के वचन सुनकर राजा अपना दुःख दबाकर स्वस्थ हुआ।

मन्त्री ने बहुत विचार करने के बाद अपने दूतों को अलग-अलग अनेक देशों में भेजा और सन्देश भिजवाया कि जो राजा मधु के शासन का पालन करनेवाले हैं, वे समस्त इस बसन्त ऋतु में यहाँ पधारें और राजा मधु के साथ वन में क्रीड़ा करें। इसी प्रकार राजा हेमरथ को भी पत्र लिखकर दूत को भेजा गया तथा साथ में चन्द्रप्रभा को लाने के लिये कहा। पत्र पढ़कर हेमरथ अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने अपनी प्राणप्रिया रानी चन्द्रप्रभा को वह पत्र पढ़ने के लिये दिया। रानी चन्द्रप्रभा ने पत्र पढ़कर कहा—'हे स्वामी! राजाओं का सेवकों पर अत्यन्त आदर दिखाना ठीक नहीं है। यह कोई जाल रचा हुआ लगता है। राजाओं का कोई भी कार्य बिना प्रयोजन नहीं होता। इसलिए हे नाथ! आप चाहें तो जायें, परन्तु मुझे साथ लेकर न जायें, क्योंकि आरती उतारते समय ही मैं उसकी दृष्टि जान गयी थी। यदि मैं वहाँ गयी तो अवश्य मेरा हरण किये बिना नहीं छोड़ेगा।'

राजा हेमरथ ने कहा—'हे मूढ़मते! तू क्या ऐसे निन्दित वचन कहती है! तेरे समान सुन्दर उसके महल में अनेक दासियाँ हैं।'

तब दूरदर्शी रानी ने कहा—'हे स्वामी! मैंने जो उचित समझा, वह कह दिया। जो भवितव्य में लिखा होगा, वह तुम्हें बाद में ज्ञात हो जायेगा।'

रानी का स्पष्ट उत्तर सुनकर भी राजा ने कहा—'बहुत अच्छा ही होगा, तुम चिन्ता नहीं करो।' इस प्रकार बहुत समझाकर राजा हेमरथ, रानी चन्द्रप्रभा तथा दूसरे अनेक दास-दासियोंसहित अयोध्या पहुँच गया। अयोध्या पहुँचने पर राजा मधु ने उसका बहुत सम्मान किया और उसे एक सुन्दर महल रहने के लिये प्रदान किया। दूसरे सभी राजा भी अपनी रानियों के साथ आ पहुँचे। उन्हें भी यथायोग्य सम्मानपूर्वक आदरसहित ठहराया गया। जब वन की सजावट हो गयी, तब राजा मधु अपनी रानियों और सामन्त राजाओं तथा उनकी स्त्रियोंसहित वनक्रीड़ा के लिये चल पड़े। राजा मधु ने एक माह तक वनक्रीड़ा की।

तत्पश्चात् राजा मधु वापिस अपने महल में आया और सभी राजाओं को अनेक भेंट उपहार प्रदान कर विदा करने लगा। उन्होंने हेमरथ को बुलाकर कहा—'हे मित्र! तुम्हारे और तुम्हारी रानी के लिये उत्तम आभूषण अभी तैयार नहीं हैं। स्वर्णकार तुम्हारे लिये आभूषण तैयार कर रहे हैं, वे शीघ्र तैयार हो जायेंगे। तुम अभी अपनी रानी चन्द्रप्रभा को यहीं छोड़कर निश्चिन्तरूप से वटपुर जाओ क्योंकि राजा के बिना राज्य में कोई भी चढ़ाई कर सकता है। बाद में तुम्हारे योग्य गहने बन जाने पर मैं तुम्हारी रानी के साथ शीघ्र भेज दूँगा।'

राजा मधु के कपट पूर्ण वचनों को नहीं समझकर भोले राजा हेमरथ ने उस कामी के वचन सत्य समझकर यही कहा 'जैसी आपकी इच्छा।' और वहाँ से प्रस्थान कर गया।

इस प्रकार राजा मधु से विदा लेकर राजा हेमरथ अपनी रानी चन्द्रप्रभा के समीप आया और उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

उसने कहा कि मैं अभी जा रहा हूँ और तुम बाद में आभूषण लेकर आ जाना। तुम्हारे पास विश्वासपात्र वृद्ध मन्त्री और दासियों को छोड़कर जा रहा हूँ।

राजा हेमरथ की बात सुनकर रानी चन्द्रप्रभा अत्यन्त दु:खित हुई और उसने कहा—'हे नाथ! अब मैं समझ गयी कि एक तो आप अपने अभाग्य के वश होकर मुझे यहाँ लेकर आये और अब यहाँ अकेली छोड़कर जा रहे हो। आप निश्चित समझे कि राजा मधु मुझे बलजोरी से अपनी रानी बनायेगा और उसके अन्त:पुर में प्रविष्ट कर लेगा, तब आप कुछ भी नहीं कर सकोगे। फिर आपको पश्चात्ताप का भी समय नहीं मिलेगा।' इस प्रकार दु:खी हृदय से रानी चन्द्रप्रभा ने उसे बहुत समझाया परन्तु दुर्भाग्यवश राजा हेमरथ ने कुछ नहीं माना और रानी चन्द्रप्रभा को छोड़कर चला गया।

राजा हेमरथ के चले जाने के बाद राजा मधु, रानी चन्द्रप्रभा से मिलने के लिये अत्यन्त आतुर हो गया। सूर्यास्त हो गया था और अन्धकार होने लगा। राजा मधु ने मन्त्री को रानी चन्द्रप्रभा के पास एक दूती भेजकर उसे अपने पास ले आने के लिये कहा। मन्त्री ने शीघ्र ही एक दूती को रानी चन्द्रप्रभा के पास भेजा। दूती ने चन्द्रप्रभा को नमस्कार करके कहा—'राजा मधु अपने महल में विराजमान थे और अचानक राजा हेमरथ के दूत ने आकर अपने राजा का सन्देश सुनाया कि हे राजन! यदि आपका मुझ पर सच्चा स्नेह हो तो मेरी रानी को जैसे बने वैसे शीघ्र मेरे पीछे भेज दें, विलम्ब न करें। यह सन्देश सुनकर राजा मधु ने आपको आज ही विदा करने का निर्णय किया है। इसलिए

आप अभी ही वहाँ पधारें और राजा आपको अपनी रानियों के गहने देंगे, उन्हें स्वीकार करें।'

दूती के वचन सुनकर चन्द्रप्रभा चिन्ता में पड़ गयी। वह विचार करने लगी कि यदि मैं वहाँ जाऊँगी तो राजा बलजोरी से मुझे अपनी रानी बना लेगा और यदि नहीं जाऊँ तो उसका अपमान होने से क्रोध करेगा। वह इस प्रकार की उलझन में आ पड़ी। अन्त में डरते-डरते अपने विश्वस्त मन्त्रियों को साथ लेकर रानी चन्द्रप्रभा दूती के साथ चल पड़ी। राजा मधु महल के सातवें माले पर बैठा था। दूती उसकी सखियों और मन्त्री को नीचे खड़े रखकर चन्द्रप्रभा को लेकर सातवें माले पर पहुँची और वहाँ उसे अकेली छोड़कर स्वयं अपने स्थान को चली गयी। उस खण्ड में राजा मधु को अकेला देखकर रानी चन्द्रप्रभा उसका भाव समझ गयी। वह खड़े-खड़े कम्पित होने लगी। राजा मधु ने उसे बलजोरी से अपने निकट बैठाकर कहा—'हे सुन्दरी! शान्त हो! प्रसन्न हो! तेरा पति तो मेरा अनुचर है, यह तो तेरा सौभाग्य है कि तू निम्न दशा को छोड़कर मेरी प्राणप्रिया बनी है।' इस प्रकार बहुत समझाने पर भी जब चन्द्रप्रभा नहीं समझी, तब राजा मधु ने बलजोरीपूर्वक चन्द्रप्रभा के साथ रमण किया और अपनी कामचेष्टाओं से चन्द्रप्रभा को भी कामासक्त कर दिया। जिससे चन्द्रप्रभा भी अपने पति हेमरथ को भूलकर राजा मधु के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगी, रतिक्रिया में मग्न दोनों ने व्यतीत होते हुए समय को नहीं जाना।

❖ ❖ ❖

इस ओर हेमरथ के जो विश्वस्त मन्त्री रानी चन्द्रप्रभा के

साथ रुके हुए थे, उन्हें जब विदित हुआ कि राजा मधु ने चन्द्रप्रभा को अपनी रानी बना लिया है, तब वे दु:खी होकर अपने नगर में वापिस चले गये और वहाँ पहुँचकर राजा हेमरथ को सम्पूर्ण वास्तविकता कह सुनायी। अपनी रानी का छल से हरण सुनकर राजा हेमरथ बेहोश हो गया। होश में आते ही वह राजा मधु पर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसके साथ युद्ध के लिये मन्त्रियों को आज्ञा दी। मन्त्रियों ने राजा हेमरथ को समझाते हुए कहा—'हे राजन! अपनी इतनी शक्ति नहीं है कि राजा मधु को युद्ध में पराजित कर सकें; इसलिए अब रानी को भूल जाइये।' मन्त्रियों के ऐसे वचन सुनकर राजा हेमरथ अत्यन्त दु:खी हुआ। वह चन्द्रप्रभा के बिना पागल हो गया। उसने राज्य का काम छोड़ दिया और नगर की गलियों में भटकने लगा तथा किसी भी स्त्री को देखकर चन्द्रप्रभा.. चन्द्रप्रभा.. कहकर पुकारने लगा।

इस प्रकार भटकते-भटकते एक दिन दैवयोग से वह अयोध्या नगरी आ पहुँचा और वहाँ भी अपनी प्रिय चन्द्रप्रभा को पुकारते हुए घूमता रहा। एक दिन रानी चन्द्रप्रभा महल के झरोखे में सुख-मग्न बैठी हुई थी, उसने नीचे अपने पति को इस प्रकार पागल होकर घूमते देखकर वह अत्यन्त दु:खी हुई और रुदन करने लगी। उस समय राजा मधु वहाँ पहुँच गया। रानी चन्द्रप्रभा ने अपने मन के दु:ख को छुपाकर राजा मधु के साथ प्रेम से बातें की और महल की छत पर जाकर बैठ गयी।

उसी समय नगर का चण्डकर्मा नामक कोतवाल एक सुन्दर युवक पुरुष को दृढ़ रीति से बाँधकर वहाँ लाया। उसने राजा से प्रणाम करके कहा—'हे राजन! इसने परस्त्री का सेवन किया

है। इसके योग्य दण्ड प्रदान करें।' तब राजा ने क्रोधित होकर— 'इसे सूली की सजा दो, जिससे मेरे राज्य में कोई ऐसा अपराध करने की हिम्मत न करे।'

राजा के ऐसे वचन सुनकर मन में अत्यन्त क्रोधित होकर रानी चन्द्रप्रभा विनय से बोली—'हे नाथ! यह पुरुष युवक और रूपवान है, इसे आप मृत्युदण्ड क्यों दे रहे हैं? परस्त्री गमन में ऐसा कौन सा बड़ा पाप है? मुझे तो यह पाप का कार्य नहीं लगता। आप वृथा ही बेचारे को मृत्युदण्ड दे रहे हैं।' तब राजा मधु ने शास्त्र प्रमाणसहित उत्तर दिया कि यह तो महान वज्रपाप है, इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। राजा ने कहा कि—

'शास्त्र में कहा है कि परस्त्री सेवन करने से और देवद्रव्य प्रयोग करने से मनुष्य सातवें नरक में जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। यदि समस्त पाप को एक ओर रखा जाये और परस्त्री संगमरूप पाप दूसरी ओर रखा जाये तो परस्त्री सेवनरूप पाप सबसे अधिक होगा, ऐसा शास्त्र में लिखा है। निश्चय समझ कि इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। परस्त्री लम्पट जीव इस लोक में कलंकित होते हैं, राजा द्वारा दण्ड पाते हैं और दूसरे भव में नरकादि के दुःख प्राप्त करते हैं; इसलिए परस्त्री सर्वथा त्यागने योग्य है। परायी स्त्री भोगी हुई वस्तु अर्थात् उच्छिष्ट समान है।

स्त्री, मोक्षद्वार की मजबूत व्यवधान है, संसाररूप वृक्ष को पोषण देनेवाली जल की झारी है, मनुष्यरूपी हिरणों को पकड़ने के लिये जाल है, जिसके संगममात्र से आज तक में कितने ही उत्तम आत्मायें अपने अमूल्य ज्ञान-श्रद्धानरूप परम जीवितव्य को गँवाकर बैठे हैं, जिसका नाममात्र भी बड़े-बड़े मुनिवरों

का मुनित्व नष्ट कर डालता है तो उसके शरीर का प्रत्यक्ष राग क्या-क्या अनर्थ नहीं करेगा! जब स्वस्त्री भी इतने अनर्थों का द्वार है तो परस्त्री कौन-कौन से अनर्थ नहीं करेगी!!

परस्त्री में अनुराग बुद्धि रखनेवाले व्यक्ति को इस जन्म में जो चिन्ता, आकुलता, भय, द्वेषभाव, बुद्धि का विनाश, अत्यन्त सन्ताप, भ्रान्ति, भूख, प्यास, आघात, रोग और मरणरूप दुःख प्राप्त होते हैं, वे तो दूर रहो परन्तु परस्त्री सेवनजनित पाप के प्रभाव से अन्य जन्म में नरकगति प्राप्त होने से अग्नि में तप्तायमान लोहमय स्त्री के आलिंगन से जो चिरकाल तक बहुत दुःख प्राप्त होनेवाला है, उस ओर भी जीव का ध्यान नहीं जाता। यह कितने आश्चर्य की बात है!'

राजा मधु के ऐसे वचन सुनकर रानी चन्द्रप्रभा ने कहा कि—'हे देव! यदि परस्त्री सेवन करना सच में ही पाप है और आप पुण्य-पाप के स्वरूप को भले प्रकार जाननेवाले हो तो हे नाथ! मुझे-परायी स्त्री - को तुमने छल करके क्यों हरण किया? तुमने मेरी कुँवारी अवस्था में माता-पिता के यहाँ जाकर मेरे साथ सगाई नहीं की और न विवाह किया, तो फिर तुमने मेरा हरण कैसे किया? मेरा शीलभंग क्यों किया?'

चन्द्रप्रभा के ऐसे वचन सुनकर राजा मधु अत्यन्त लज्जित हुआ और उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त करके विचार करने लगा कि—**हाय हाय! मैंने ऐसा जगत निन्द्य कर्म कैसे किया! धर्मात्माओं को परस्त्री हरण और परस्त्री सेवन करना सर्वथा अनुचित है। मैं तो धर्म-अधर्म का स्वरूप और उनके फल को भले प्रकार जानता था, तथापि मोह के वशीभूत होकर मैं अन्ध**

कैसे हो गया ? जो असत्य है, वह सत्य कभी भी नहीं हो सकता और जो अधर्म है-पाप है, वह तीन काल में धर्म-पुण्य नहीं हो सकता। ऐसा जानकर ज्ञानियों को अधार्मिक सकल निन्दनीय कर्म कभी भी नहीं करना चाहिए। यह शरीर माता के रुधिर और पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ है, मल, मूत्रादि अशुचि पदार्थयुक्त गर्भस्थान में रहा है, माता के गर्भ की गर्मी से बढ़ा है, अतिशय निन्द्य द्वार से निकला है, अपवित्र सप्त धातुमय है तथा चर्म से आच्छादित अस्थि और जाल का पिण्ड है! ऐसे शरीर को देखकर मोह किस प्रकार हो ? हाय! यह जीव संसार की अवस्था को इन्द्रजाल समान अस्थिर जानता होने पर भी मूढ़ होकर क्यों उसमें ही मोहित होता है। यह बड़ी विचित्रता है! क्या मेरे घर में सुन्दर रानियाँ नहीं थीं कि जो मैंने-जड़मति ने यह परस्त्री का हरण और सेवन किया ? जैसा मैंने इस भव में पापकर्म उपार्जित किया है, वैसा ही फल मुझे भोगना पड़ेगा क्योंकि जैसा फल बोते हैं, वैसा ही फल मिलता है! यह मोह ही नरक में ले जाने का और संसार भ्रमण का कारण है। धन-धान्य, स्त्री, यौवन, पंचेन्द्रिय के विषय, सेना, बन्धुवर्ग, पुत्र, मित्रादिक तथा इस जीवन में से कुछ भी स्थिर नहीं है।

अन्ध मनुष्य तो नेत्र से देखता नहीं परन्तु विषयान्ध मनुष्य किसी प्रकार से नहीं देख सकता; इसलिए वह सर्व अन्धों में महाअन्ध है।

अहो! विवेकशून्य मूढ़ आत्मा सर्व इन्द्रियविषयों से तप्तायमान होता हुआ इतना अधिक तीव्र तृष्णातुर हुआ है कि मनोवांछित वस्तु नहीं मिलने पर उसे ही प्राप्त करने की कामना में अनेक पापरूप उपाय कर-करके अत्यन्त व्याकुल हो रहा है।

यह कुटुम्बादि बन्धुजन अनन्त संसार बन्ध के कारणरूप जो कर्मबन्ध है, उसे उत्पन्न करने में सहायक है। परमार्थ से तो ये बैरी हैं, ऐसा जानकर उन्हें हितैषी मानकर उनके प्रति राग करना या उनके राग में अन्ध होना उचित नहीं है।

हे भव्यात्मन! जैसे समुद्र में मध्यभाग में पड़ा हुआ रत्न फिर से प्राप्त करना दुर्लभ है, वैसे तू निश्चय से मान कि यह मनुष्यपना प्राप्त करना अति-अति दुर्लभ है।

हाय! अत्यन्त दुःख की बात है कि जो अपने को पण्डित मानते हैं, उनको भी इस प्रचण्ड काम ने इष्ट स्त्रियों के निमित्त से ज्ञानीपने से खण्ड-खण्ड करके महा दुःखी-दुःखी कर डाला है! तथापि वे ही पण्डित उस काम को धीरज से सहन कर रहे हैं, परन्तु उसे तपरूप प्रचण्ड अग्नि से भस्म करने में किंचित् भी उत्साहवन्त नहीं होते, यह परम आश्चर्य है!

भोग का पूर्ण निमित्त प्राप्त होने पर भी उसे भोगने के अतिरिक्त या भोगने की वृत्ति के अतिरिक्त जो उसे छोड़ते हैं, उन्हें धन्य है! और वही बड़ा आश्चर्य है।

हे भव्य! यदि तू मोक्षलक्ष्मीरूपी नायिका को चाहता हो तो अन्य लौकिक स्त्रियों की बातें तक भी छोड़कर, मोक्षलक्ष्मी में ही तेरा अनुराग बढ़ाकर रत्नत्रय आदि सर्वोत्तम अलंकारों से उसे साध्य कर! और वही मात्र उस सर्वोत्तम नायिका को वरने का सच्चा उपाय है।

स्त्रीरूप अगाध और अमर्यादित गहरे और गहरे जाल में कितने ही जीवों को विषयरूप मगरमच्छ पकड़-पकड़कर निगल गये, जिनका फिर पता लगना भी कठिन हो गया। इसलिए स्त्रियों का विश्वास करना योग्य नहीं है।

जैसे कीड़ा या सूकर विष्टा में रति मान रहे हैं, वैसे तू काम से अन्ध होकर स्त्री के दुर्गन्धित सड़े हुए कलेवर में रति मान रहा है। क्योंकि कामान्ध पुरुष को भले बुरे का विवेक ही नहीं होता! हे भव्य! महा अन्धकारसम यह कामान्धपना छोड़कर अब तो कुछ विवेकी हो!

इस प्रकार विषयाभिलाषा से विरक्त होकर और संसार की असारता का विचार करते हुए राजा मधु ने परस्त्री सेवन करनेवाले पुरुष को छोड़ने की आज्ञा प्रदान की और एकान्त में जाकर अधिक विचार करने लगे। उसी समय एक मुनिराज आहार लेने के लिये महल की बगल में पधारे। उन्हें आते देखकर राजा मधु, चन्द्रप्रभासहित अत्यन्त हर्षित होकर उनके सन्मुख गये। मुनिराज की अतिशय भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा करके राजा ने कहा—हे भगवन! तिष्ठो... तिष्ठो... आहार-जल शुद्ध है। तत्पश्चात् उन्होंने मुनिराज के समक्ष उसी चन्द्रप्रभा रानी के साथ कुशील आदि पाप का त्याग किया और शुद्ध परिणामों से नवधाभक्तिपूर्वक मुनिराज को आहारदान प्रदान कर महान पुण्य उपार्जन किया। आहार के पश्चात् मुनिराज वन की ओर विहार कर गये। वहाँ उन्होंने चार घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनिराज के केवलज्ञान प्राप्ति के समाचार सुनकर राजा परिवारसहित वन में गया। वहाँ श्री केवलीभगवान का उपदेश सुनकर राजा मधु परम वैराग्य को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने बड़े पुत्र को राज्यभार सौंपकर स्वयं जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। राजा मधु के साथ उनकी पट्टरानी, चन्द्रप्रभारानी, और छोटा भाई कैटभ तथा उसकी पत्नी ने भी दीक्षा ग्रहण की अर्थात् छोटे भाई ने जिनदीक्षा ग्रहण की तथा रानियाँ आर्यिका हुई।

पुण्य के योग से वे सभी समाधिमरण करके स्वर्ग में अवतरित हुए। चन्द्रप्रभा के जीव ने देवांगना की अवस्था में राजा मधु के जीव के साथ चिरकाल तक सुख भोगकर, स्वर्ग में से चयकर मलिन कर्म के योग से गिरिपतन नामक नगर में राजा हरि और हरिवती नामक रानी के यहाँ कनकमाला नामक पुत्री हुई है। उस कनकमाला का राजा कालसंवर के साथ विवाह हुआ। राजा मधु का जीव श्री कृष्ण नारायण की रानी रुक्मणी के गर्भ में आया। पूर्व भव का शत्रु राजा हेमरथ का जीव कुतप से मरण प्राप्त कर धूमकेतु नामक असुरों का नायक देव हुआ और पूर्व के बैर से प्रद्युम्न को जन्मते ही उठाकर ले गया। अभी वह प्रद्युम्नकुमार उन राजा कालसंवर के यहाँ वृद्धिगत हो रहा है, वह सोलह वर्ष की उम्र में सोलह प्रकार के लाभ और दो विद्याओं सहित अपने माता-पिता को आकर मिलेगा।

यह कृष्ण पुत्र का समग्र वृत्तान्त सुनकर नारदजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और नमस्कार करके राजा कालसंवर के यहाँ जाकर, उनके अन्त:पुर में पहुँचकर कृष्ण पुत्र को देखा। वहाँ से निकलकर श्री कृष्ण नारायण और रुक्मणी से मिलकर उनके पुत्र का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और उन्हें प्रसन्न किया।

❖ ❖ ❖

यहाँ प्रश्न होता है कि जब श्री कृष्ण को विदित हुआ कि उनका पुत्र विद्याधर राजा कालसंवर के यहाँ है तो उन्हें ऐसा विचार क्यों नहीं आया कि मैं अपने पुत्र को सोलह वर्ष होने की राह देखने के बदले अभी ही जाकर ले आऊँ। श्री कृष्ण में शक्ति बहुत थी। जब द्रोपदी का अपहरण हो गया था, तब श्री कृष्ण, देव को साधकर विदेह में से द्रोपदी को वापिस लाये थे;

तो फिर भरतक्षेत्र में ही रहे हुए अपने पुत्र को ले आने का उद्यम क्यों नहीं किया ? इसका क्या कारण ?

सर्वज्ञ के ज्ञान की दृढ़ श्रद्धा!!! क्रमबद्ध की यथार्थ श्रद्धा!

यदि तुरन्त ही प्रद्युम्न को लेकर आवे तो सर्वज्ञ भगवान ने जो कहा कि सोलह वर्ष में सोलह प्रकार के लाभ और दो विद्यायें लेकर आयेगा – वह मिथ्या सिद्ध होगा।

पूर्व भव की चन्द्रप्रभा रानी जो इस भव में पालक-माता बनी है, उसे प्रद्युम्न की युवा अवस्था में उसके साथ रमण करने का जो विकार उत्पन्न होनेवाला है, वह प्रद्युम्न की बालवय में रानी को किस प्रकार उत्पन्न होगा ?

कनकमाला के मिथ्या दोषारोपण के कारण प्रद्युम्न और कालसंवर के बीच जो युद्ध होनेवाला है, वह किस प्रकार होगा!

तदुपरान्त सोलह वर्ष की समयावधि में छोटे-बड़े जितने प्रसंग बननेवाले हों, वे सर्वज्ञ केवलीभगवान ने अपने ज्ञान में देखे हैं, वे सब प्रसंग नहीं बनने से सर्वज्ञ का ज्ञान मिथ्या सिद्ध होगा, जो तीन काल-तीन लोक में शक्य नहीं है।

जब तक श्री कृष्ण को ज्ञात नहीं था कि बालक कहाँ चला गया – कौन उसका अपहरण कर गया, वहाँ तक शक्ति भर प्रयत्न किया कि बालक को खोजकर वापिस ले आऊँ, परन्तु जहाँ उन्होंने नारदजी के मुख से सुना कि सीमन्धर भगवान के ज्ञान में आया है कि बालक सोलह वर्ष में अनेक लाभ और विद्याओंसहित वापिस आयेगा, तब वे दुःखी होने के बदले सुखी हुए और उसे प्राप्त करने का-क्रमबद्ध से पहले पुरुषार्थ करके प्राप्त करने का-सर्वज्ञता के ज्ञान को मिथ्या करके प्राप्त

करने का पुरुषार्थ नहीं किया और शान्ति से धर्मध्यानपूर्वक दिन व्यतीत करते हुए प्रद्युम्न के वापिस आने की राह देखने लगे।

विचार करो कि मोह की तीव्रतावश सोलह वर्ष की राह देखने के बदले तुरन्त ही प्रद्युम्न को वापिस लाने का प्रयत्न किया होता तो ? तो ये सब प्रयत्न व्यर्थ जाते, क्योंकि काललब्धि प्राप्त हुए बिना किसी भी कार्य की उत्पत्ति होना असम्भव है; ऐसा उसका परिणमन कराने को उसका द्रव्य भी सक्षम नहीं है तो अन्य द्रव्य-चाहे इन्द्र हो तो भी-क्या कर सकता है।

अपने पुत्र को शीघ्रता से वापिस लाने सम्बन्धी कुछ प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ नहीं, परन्तु वास्तव में तो सोलह वर्ष तक बालक को लाने का कोई प्रयत्न न करके ज्ञातादृष्टारूप से रहकर मात्र राह देखते रहना, वही सच्चा पुरुषार्थ है! उसी का नाम सर्वज्ञ की सच्ची श्रद्धा है! वही क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त की सच्ची श्रद्धा है! और अकर्तारूप से रहना, वही वास्तविक पुरुषार्थ है!!

❖ ❖ ❖

पूर्व पुण्य के प्रभाव से प्रद्युम्नकुमार, राजा कालसंवर के यहाँ वृद्धिगत होता गया। थोड़े समय में ही वह सम्पूर्ण शास्त्रों और शस्त्र विद्या में पारंगत हो गया तथा सब में प्रमुख हो गया। जो-जो शत्रु उस पर चढ़ाई करते, उनके साथ स्वयं प्रद्युम्न युद्ध करता और युद्ध में शत्रु को भगाकर विजय प्राप्त कर आता। उसकी कीर्ति दसों दिशाओं में व्याप्त हो गयी। वह विशाल सेना लेकर दिग्विजय करने निकला और थोड़े ही समय में दिग्विजय करके बहुत विभूति सहित वापिस आया। प्रद्युम्न के दिग्विजय के समाचार सुनकर राजा कालसंवर ने सम्पूर्ण नगरी का शृंगार

कराया और देश-देश के राजाओं को बुलाकर सबकी उपस्थिति में प्रद्युम्न को युवराज पद पर स्थापित किया।

रानी कनकमाला के अतिरिक्त राजा को दूसरी पाँच सौ रानियाँ थीं, जिनसे उन्हें पाँच सौ पुत्र थे। प्रद्युम्न को युवराज पद मिलने से पाँच सौ पुत्रों की माताओं ने क्रोध से भरकर अपने पुत्रों को कहा—'तुम्हारे होते हुए प्रद्युम्न राज ले जाये तो तुम्हारे जीवन से क्या ? अब तुम कुछ भी करके छल से उसे मार डालो, क्योंकि उसके जीते-जी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।' दुष्ट पुत्रों ने माताओं का अभिप्राय समझ लिया और निश्चित किया कि किसी भी उपाय से प्रद्युम्न को मार डालना चाहिए।

प्रद्युम्न को मार डालने के भाव से वे प्रद्युम्न के साथ मायाचारी युक्त प्रेम रखने लगे। वे प्रद्युम्न की एक-एक बात का ध्यान रखने लगे। उसके भोजन में जहर भी बहुत बार मिलाया परन्तु पूर्व पुण्य के कारण वह अमृतरूप परिणमित हो जाता था। जहर से मृत्यु न होने पर सभी भाईयों ने क्रोधित होकर दूसरा उपाय विचार किया। सबने बड़े बन्धु व्रजदंष्ट्र को अपना प्रमुख बनाकर प्रद्युम्न को विश्वास में लेकर विजयार्ध के शिखर पर ले गये, वहाँ उन्होंने एक गोपुर देखा। व्रजदंष्ट्र ने कहा जो कोई इस गोपुर के अन्दर जायेगा, उसे बहुत लाभ प्राप्त होगा, ऐसा वृद्ध विद्याधर कहते आये हैं; इसलिए तुम यहीं खड़े रहो, मैं तुम्हारे लिये लाभ लेकर आता हूँ।

पराक्रमी, सरल चित्त प्रद्युम्नकुमार भाई की आज्ञा लेकर उसके बदले स्वयं लाभ लेने गोपुर के अन्दर गया और जोर से आवाज करके द्वार को जोर से लात मारी। आवाज सुनकर वहाँ

का भुजंग नामक रक्षक देव क्रोधित होकर आया और दोनों के बीच महाभयंकर युद्ध हुआ। प्रद्युम्नकुमार ने युद्ध में देव को पराजित कर दिया। देव, कुमार के चरणों में गिर पड़ा, उसने प्रद्युम्नकुमार को स्वर्ण के सिंहासन पर विराजमान किया। भुजंग नामक देव ने कहा—'हे स्वामी! मैं यहाँ आपके लिये ही चिरकाल से निवास कर रहा हूँ, उसका कारण इस प्रकार है।

❖ ❖ ❖

इस विजयार्ध पर्वत पर एक अलंकार नामक उत्तम नगर है, उसमें गुणों का सागर कनकनाभि नामक राजा, पतिव्रता अनिला नाम की रानी के साथ राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम हिरण्यनाभि था। राजा कनकनाभि ने दीर्घ काल तक राज्य का भोग किया। तत्पश्चात् अपने पुत्र को राज्य सौंपकर श्री पिहितास्रव मुनिराज के निकट दिगम्बर जिनदीक्षा धारण कर ली। थोड़े समय में ही उन्होंने घातिकर्मों का नाश करके, चार अघातिकर्मों का भी नाश किया और सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये।

एक दिन राजा हिरण्यनाभि अपने महल के ऊपर बैठे हुए थे कि उसने बहुत विशाल सेना और महाविभूतिसहित किसी दैतेन्द्र को देखा। उसने विचार किया कि मेरी विभूति तो इससे बहुत हीन है, इसलिए मुझे अपनी विभूति बढ़ाना ही चाहिए। ऐसा दृढ़ संकल्प करके छोटे भाई को राज्य सौंपकर स्वयं सिद्ध नामक वन में गया, वहाँ रोहिणी विद्या सिद्ध करके, वापिस आकर राज्य अपने हाथ में लेकर इन्द्र समान राज्य सुख भोगा।

एक दिन हिरण्यनाभि संसार को असार जानकर वैराग्य को प्राप्त हुआ। अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके नमिनाथस्वामी के

समवसरण में जाकर वहाँ जिनदीक्षा अंगीकार करने के लिये तैयार हुआ, वहाँ उसकी विद्याओं ने सामने आकर प्रार्थना की कि—'हे नाथ! आपके बिना हम अनाथ हो जायेंगे। हमें कहाँ जाना?' तब हिरण्यनाभि ने श्री गणधर भगवान से पूछा। उन्होंने कहा कि—'हे राजन्! हरिवंश शिरोमणि श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के बड़े भाई नौवें नारायण द्वारिकानाथ श्री कृष्ण को रानी रुक्मणी से प्रद्युम्न नाम का महाबली पुत्र होगा। वह जब गोपुर में आयेगा, तब इन सब विद्याओं का स्वामी होगा। इसलिए हिरण्यनाभि राज की आज्ञा से मैं इस गोपुर में आपकी राह देखकर अभी तक यहाँ रहा हूँ। अब आप इन समस्त विद्याओं का स्वीकार करें।' ऐसा कहकर कुमार को रत्नमुकुट और दिव्य आभरण प्रदान कर उनकी पूजा की। विद्यायें बोलीं—'हे नाथ! आज से हम आपकी किंकरी हैं। हमारे योग्य आज्ञा करें।' कुमार ने कहा—'जब मैं तुम्हें स्मरण करूँ, तब उपस्थित होना।'

इस ओर व्रजदंष्ट्र ने विचार किया कि प्रद्युम्न को गोपुर गुफा में बहुत देरी हो गयी है, इसलिए वह निश्चितरूप से मर गया होगा। ऐसा विचार कर सभी भाई आनन्दित होकर खड़े हुए और जहाँ घर की ओर जाने लगे, तभी प्रद्युम्न को अनेक लाभ और उत्तम आभरणों सहित आया हुआ देखकर कपटपूर्वक हर्ष व्यक्त किया और दूसरी काल की गुफा के निकट ले गये। व्रजदंष्ट्र ने पहले की तरह इस गुफा में भी लाभ बताया और स्वयं जाने के लिये तैयार हुआ। तब प्रद्युम्नकुमार बड़े भाई की आज्ञा लेकर स्वयं गुफा में गया। वहाँ भी उसके अद्‌भुत पराक्रम के सन्मुख उस काल नामक गुफा का रक्षक देव उसके सन्मुख नहीं टिक

सका और कुमार को प्रणाम करके दो सुन्दर चँवर, एक निर्मल छत्र, एक पवित्र रत्न, एक सुन्दर तलवार, वस्त्राभूषण और पुष्प भेंट में प्रदान किये। प्रद्युम्नकुमार ये सब लाभ लेकर देव को वहीं गुफा में स्थापित कर काल गुफा में से बाहर आया।

जब इस काल गुफा में से भी प्रद्युम्न जीवित बाहर आया तो सभी भाई दुःखी हुए परन्तु ऊपर से प्रसन्नता बतलाकर तीसरी नाग नामक गुफा में ले गये। वहाँ भी व्रजदंष्ट्र ने दैवी लाभ बतलाया। जिसे पाने के लिये प्रद्युम्न गुफा में गया और वहाँ के स्वामी नागराज से भयंकर युद्ध करके उसे पराजित किया। नागराज ने कुमार को एक नागशय्या, वीणा, कोमल आसन तथा गृहकार्यिका और सैन्यरक्षिका नामक दो विद्यायें प्रदान कीं। नागराज को आज्ञाकारी बनाकर, सभी लाभ लेकर वहाँ से भी कुमार बाहर आया।

तत्पश्चात् सभी भाई कुमार प्रद्युम्न को दैवरक्षित वावणी दिखलाने के लिये ले गये। व्रजदंष्ट्र के मुख से उसके लाभ का वर्णन सुनकर प्रद्युम्नकुमार वावणी में कूद पड़ा। वहाँ के रक्षक देव के साथ युद्ध करके, उसे पराजित करके अपने आधीन किया। देव ने उसे एक मकर की ध्वजा भेंट में प्रदान की। तब से प्रद्युम्नकुमार मकरकेतु के नाम से जगत में प्रसिद्ध हुआ।

वहाँ से आगे बढ़कर प्रद्युम्नकुमार को असुरसेवित अग्निकुण्ड देखने ले गये। वहाँ भी व्रजदंष्ट्र ने कहा —'जो इस अग्निकुण्ड में जाता है, उसे अनेक लाभ प्राप्त होते हैं और राज्य भी मिलता है।' यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार ने उस अग्निकुण्ड में निःशंक होकर प्रवेश किया, वहाँ भी देव के साथ घोर युद्ध किया और

देव को पराजित कर, उससे अग्नि से धोये हुए और स्वर्णतन्तु से निर्मित दो वस्त्र भेंट में प्राप्त कर कुण्ड में से बाहर आया।

प्रद्युम्न को मारने की इच्छा से समस्त भाई, उसे दूसरे एक मेषाकार पर्वत पर ले गये। वहाँ के लाभ का वर्णन सुनकर प्रद्युम्नकुमार, भाई की आज्ञा प्राप्त कर उस पर्वत पर गया। जब कुमार पर्वत के दो शिखर के बीच पहुँचा, तब वे दोनों दिव्य शिखर एक-दूसरे के साथ मिलकर कुमार को दबाने लगे। तब कुमार ने अपने हाथ से दोनों शिखरों को इकट्ठा होने से रोक दिया, इससे क्रोधित होकर वहाँ का निवासी असुरदेव प्रगट हुआ और फिर दोनों के बीच युद्ध हुआ। युद्ध में असुरदेव पराजित हुआ और दो रत्न के कुण्डल भेंट में प्रदान कर कुमार को विदा किया। उसे वापिस आता देखकर सभी भाई अत्यन्त क्रोधित हुए और व्रजदंष्ट्र को कहा कि अब तो अपने को ही इसे मार डालना चाहिए क्योंकि यह जहाँ जाता है, वहाँ से बचकर वापिस आ जाता है। तब व्रजदंष्ट्र ने कहा कि थोड़ा धीरज रखो, अभी बहुत स्थान शेष हैं, कहीं तो लोभ के कारण मरेगा ही।

तत्पश्चात् सभी भाई, प्रद्युम्न को कौतुकवश विजयार्ध पर्वत देखने ले गये। वहाँ एक वन था और वन में एक आम्रवृक्ष था। व्रजदंष्ट्र ने कहा कि जो कोई इस वृक्ष के अमृततुल्य फल खाता है, वह सदा ही यौवनयुक्त रहता है। व्रजदंष्ट्र की आज्ञा प्राप्त होते ही प्रद्युम्न उस वृक्ष के निकट गया और वृक्ष पर चढ़कर निःशंक होकर जोर से डालियाँ हिलाने लगा। वहाँ का देव भयंकर बन्दर का रूप धारण कर प्रगट हुआ और यद्वा-तद्वा बकने लगा। कुमार क्रोध से भर गया और दोनों के बीच भयंकर युद्ध हुआ,

अन्त में देव पराजित हो गया। उसने कुमार को एक मुकुट, एक अमृतमाला और दो आकाशगामिनी पादुका भेंट में प्रदान की। वहाँ से भी प्रद्युम्न को जीवित आते देखकर सभी भाई अत्यन्त क्रोध से भर गये परन्तु व्रजदंष्ट्र ने उन्हें शान्त किया।

वहाँ से आगे बढ़कर व्रजदंष्ट्र कपिल नामक वन के निकट प्रद्युम्न को ले गया, वहाँ भी व्रजदंष्ट्र ने अनेक लाभ वर्णन किये। प्रद्युम्नकुमार तुरन्त ही निडरता से वन में जाकर एक वृक्ष पर चढ़ गया। इतने में एक असुरदेव अंजन समान काले हाथी का रूप लेकर गर्जना करते हुए कुमार की ओर दौड़ता आया। कुमार ने थोड़ी ही देर में उसे परास्त कर दिया। देव ने कहा—'हे नाथ! मैं आपका सेवक हूँ, जब आवश्यकता पड़े, तब स्मरण करना, मैं उपस्थित हो जाऊँगा।' इस प्रकार कहकर देव ने कुमार को विदा किया।

तत्पश्चात् व्रजदंष्ट्र, प्रद्युम्नकुमार को अनुबालक शिखर के निकट ले गया। वहाँ जाकर प्रद्युम्नकुमार साहसपूर्वक शिखर पर चढ़ गया। इतने में असुरदेव सर्प का रूप धारण करके आया। दोनों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में दैत्य पराजित हुआ, तब दैत्य ने कुमार को अश्वरत्न, घरी, कवच, और मुद्रिका भेंट में प्रदान कर विदा किया।

तत्पश्चात् भाई, प्रद्युम्नकुमार को शरावाकार नामक महापर्वत के निकट ले गये। वहाँ ऊपर चढ़कर, वहाँ के देव को युद्ध में पराजित कर, उससे कंठी, बाजुबंध, दो कड़े और कटिसूत्र प्राप्त कर, प्रद्युम्नकुमार वापिस आकर भाईयों से मिला। वहाँ से व्रजदंष्ट्र, प्रद्युम्नकुमार को बाराहाकार पर्वत पर ले गया, उस पर्वत का

आकार सूकर के समान था। प्रद्युम्न दौड़कर उस पर्वत पर चढ़ गया। वह सूकराकार मुख इकट्ठा होने लगा, जिसे प्रद्युम्न ने कोहनी की मार से तोड़ डाला। उसमें से बाराहमुख नामक देव प्रगट हुआ और प्रद्युम्न के साथ युद्ध किया परन्तु युद्ध में तो पुण्य की ही जीत थी अर्थात् प्रद्युम्न ने देव को पराजित किया और जयशंख नामक शंख, पुष्पमयी धनुष भेंट में प्राप्त कर भाईयों से आकर मिला।

वहाँ से व्रजदंष्ट्र, कुमार प्रद्युम्न को पद्म नामक वन में ले गया। लाभ प्राप्त करने की इच्छा से वह तुरन्त ही वन में चला गया। वहाँ जाकर देखता है कि एक मनोजव नाम का विद्याधर एक वृक्ष के नीचे बँधा हुआ है। निडर प्रद्युम्न ने उससे पूछा— 'हे विद्याधर! तुम्हें इस निर्जन वन में किसने बाँधा?' विद्याधर ने कहा—'बसन्तक नामक मेरे पूर्व के शत्रु ने मुझे बाँधा था।' उसकी प्रार्थना सुनकर प्रद्युम्नकुमार ने उसे बन्धन मुक्त किया। मनोजव विद्याधर तुरन्त ही उसके शत्रु बसन्तक को पकड़कर प्रद्युम्नकुमार के पास ले आया। कुमार ने दोनों विद्याधरों में मित्रता करा दी। मनोजव नामक विद्याधर ने कुमार को एक बहुमूल्य हार और एक इन्द्रजाल नामक विद्या भेंट में प्रदान की। बसन्तक नामक विद्याधर ने कुमार को अपनी नवीन यौवन धारण करनेवाली अतिशय सुन्दर कन्या प्रदान की। आचार्य कहते हैं कि पुण्य से क्या प्राप्त नहीं होता! अर्थात् सब ही प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् दुष्ट भाई, प्रद्युम्न को काल नामक वन में ले गये। वहाँ भी लाभ प्राप्ति के अभिप्राय से कुमार तुरन्त ही वन में घुस गया। वहाँ जाकर उस वन के महाबल नामक दुष्ट देव को जीत

लिया। उससे प्रसन्न होकर उस असुरदेव ने कुमार को मदन, मोहन, तापन, शोषण और उन्मादन नामक पाँच विख्यात बाणों के साथ एक पुष्प धनुष प्रदान किया।

तत्पश्चात् सभी भाई प्रद्युम्नकुमार को भीमा नामक सर्पाकार गुफा में ले गये। वहाँ भी कुमार शीघ्रता से गुफा में गया और वहाँ के अधिकारी देव को जीत कर उससे एक पुष्पमयी छत्र और एक पुष्पमयी सुन्दर शैय्या भेंट में प्राप्त की। कुमार को इस गुफा में से भी जीवित आते देखकर सभी भाई क्रोधित हुए और उसे स्वयं ही मारने का निर्णय किया परन्तु व्रजदंष्ट्र ने कहा कि अभी दो जगह बाकी है, जहाँ वह मर सकता है, इसलिए अभी थोड़ी देर इन्तजार कर लो।

तत्पश्चात् सभी भाई प्रद्यम्नकुमार को विपुल नामक वन में ले गये। लाभ प्राप्त करने के लोभ से प्रद्युम्न पुन: उस वन में गया, वन में जाते ही जवंतक पर्वत पर उसकी दृष्टि गयी। वहाँ एक तमाल वृक्ष के नीचे पड़ी हुई शिला पर एक कामिनी ध्यान लगाकर बैठी हुई थी। वह रूप और यौवन से छलाछल भरी हुई थी। उसके रूप का क्या वर्णन करना? जिसने तीन लोक की स्त्रियों के रूप को जीत लिया था। उसमें मोहित होकर कुमार, कामदेव के बाणों से घायल होकर उसके समक्ष ही बैठ गया। इतने में ही बसन्तक नामक देव का आगम हुआ, उसने कुमार के चरणों में नमस्कार किया और उसके समीप बैठ गया। कुमार ने उससे पूछा कि—'हे वत्स! मुझे शीघ्र कहो कि यह सुन्दरी कौन है? किसकी पुत्री है? यहाँ किसके लिये तप कर रही है?'

कुमार के वचन सुनकर वह देव कहने लगा—'हे नाथ!

एक प्रभंजन नामक विद्याधर है। उसकी वाक नामक स्त्री के उदर से यह रति नामक कन्या उत्पन्न हुई है। एक दिन प्रभंजन विद्याधर के यहाँ एक योगी पधारे। आहार ग्रहण करने के पश्चात् विद्याधर ने उन्हें विनय से पूछा—हे स्वामिन्! मेरी इस रति नामक पुत्री का पति कौन होगा? तब मुनिराज ने कहा कि द्वारिका के राजा कृष्ण की रुक्मणी रानी का प्रद्युम्न नामक सर्वगुण सम्पन्न और सर्व विद्यावान पुत्र है, वही तेरी पुत्री का पति होगा। वह बहुत साहस सहित विपुल नामक वन में आयेगा; इसलिए उत्कृष्ट पति प्राप्त करने के लिये यह रति नाम की कन्या यहाँ तप कर रही है। जिसके विषय में मुनिराज ने कहा था, वह रूप और लक्षण से तो आप ही हैं, यह निश्चित हो गया है। कन्या के पुण्य के उदय से आप यहाँ पधारे हो। तत्पश्चात् उस बसन्तक नामक देव ने दोनों का विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न कराया। स्त्री के लाभ को प्राप्त कर प्रद्युम्नकुमार अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।

विवाह सम्पन्न होने के बाद उसी मनोहर वन में एक सकट नामक असुर आकर कुमार से मिला। उसने भी कुमार को प्रणाम किया और एक कामधेनु तथा एक सुन्दर फूलों का रथ भेंट में प्रदान किया। तत्पश्चात् कुमार ने उसी पुष्प रथ पर अपनी प्राणप्रिया रति के साथ बैठकर वन के बाहर प्रयाण किया। प्रद्युम्न को सोलह लाभ लेकर आते हुए देखकर सभी भाईयों के मुख काले हो गये। सभी भाई आगे चले और प्रद्युम्नकुमार रति के साथ भाईयों के पीछे चलते हुए नगरी में पहुँचे। नगर के स्त्री-पुरुष, रतिसहित कामदेव को देखने के लिये अपने कामकाज को छोड़कर नगर के मुख्यमार्ग पर आये। नगरजनों को अपने दर्शन देते हुए

कुमार महल में पहुँचे। जहाँ राजा कालसंवर विराजमान थे। कुमार ने पिता को प्रणाम किया और पिता ने भी पुत्र का आलिंगन किया।

पिता से मिलकर कुमार अपनी माता से मिलने के लिये उनके महल में गये और माता का चरण स्पर्श करके तथा आलिंगन करके उनके सामने बैठ गये। कनकमाला ने सोलह लाभ लेकर आये हुए अपने पुत्र को आशीर्वाद प्रदान किया। अनेक उपमा समूह से संयुक्त सम्पूर्ण गुणवाले उस प्रद्युम्न के रूप को देखकर कनकमाला काम से प्रेरित होकर कामदेव के बाणों द्वारा मर्म भेद होने से मुरझा गयी। विरह की अग्नि से उसका शरीर संतप्त होने लगा। दुःख के कारण चिन्तित होकर वह विचार करने लगी कि हाय! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? लावण्य से भरपूर मेरा यह नवयौवन, मेरा रूप, मेरी कान्ति और मेरे गुण आदि तब ही सफल होंगे, जब मैं इस सर्व विद्याओं से युक्त और सुन्दर कुमार का सेवन करूँगी। जिसने इसके मुख कमल के मधुर मधु का पान नहीं किया, जिसने अपनी आँखों से इसके मुखपंकज को नहीं देखा, जिसने प्रेम से इसका आलिंगन नहीं किया, उस स्त्री के विफल जीवन से क्या? अर्थात् इसे प्राप्त किये बिना कोई भी स्त्री भाग्यशाली नहीं हो सकती! जब तक कनकमाला इन विचारों में रही, तब तक तो कुमार नमस्कार करके अपने महल में चला गया।

कुमार के चले जाने के बाद कनकमाला दुःखी होकर विचार करने लगी कि हाय! यह मुझे क्या हो गया है! काम के बाणों से मेरा शरीर घायल हो गया है। मुझसे उसकी विरह वेदना सहन

नहीं होती। उस समय कनकमाला निर्लज्ज होकर विविध विकार चेष्टा करने लगी। शरीर की निन्दा करने लगी। विरह से व्याकुल उस विद्याधरी की भूख, प्यास, नींद सब पलायन कर गयी। कोई भी शारीरिक सुख नहीं रहा। बहुत वैद्यों ने आकर उसे देखा परन्तु कुछ फल नहीं हुआ, क्योंकि उसका दु:ख असाध्य था।

❖ ❖ ❖

एक दिन राज्यसभा में राजा कालसंवर ने प्रद्युम्नकुमार से कहा—'हे पुत्र! तुम्हारी माता रोग से अतिशय पीड़ित है, उसके जीवन में भी शंका है, तथापि तू उसके समीप क्यों नहीं गया!'

विनयपूर्वक प्रद्युम्नकुमार ने पिता से कहा कि—'मुझे माता की बीमारी की जानकारी ही नहीं थी, इसलिए नहीं गया। आपकी आज्ञा से मैं इसी समय जा रहा हूँ।' ऐसा कहकर वह तुरन्त ही माता के महल में पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि उसकी माता जमीन पर पड़ी थी, उसका शरीर विरह से घायल हो रहा था। माता को दु:खी देखकर प्रद्युम्न विनयपूर्वक प्रणाम करके उसके निकट बैठ गया। उसके शरीर की चेष्टा देखकर प्रद्युम्न उसके रोग का स्वरूप विचार करने लगा।

जब प्रद्युम्न ऐसा विचार कर रहा था, तब कनकमाला अंगड़ाई लेती हुई खड़ी हुई और उसने दास-दासियों को दूर कर दिया। उसने प्रद्युम्न से कहा—'मदन! हम तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं।' ऐसा कहकर सारी वस्तुस्थिति प्रद्युम्न से कह सुनायी। उसने कहा कि—'जब तू मुझे वन में मिला, तब मैंने विचार किया था कि जब तू जवान होगा, तब तेरे साथ रमण करूँगी। अब तू काम के योग्य हो गया है, इसलिए मेरे साथ रमण कर। यदि ऐसा नहीं

करेगा तो मैं मर जाऊँगी और तेरे सिर पर स्त्री हत्या का महापाप आ पड़ेगा।'

माता के मुख से इस प्रकार के दोनों लोक से विरुद्ध वचन सुनकर प्रद्युम्न की आँखों के समक्ष अन्धकार छा गया। वह अपने को सम्हालते हुए बोला—'हे माता! तुमने यह निन्द्य से भी अतिशय निन्द्य वचन कैसे कहे? क्या उत्तम कुल में उत्पन्न हुए लोगों को ऐसी बात शोभा देती है? हे माता! कुमार्ग में गये हुए अपने चित्त को तुम्हें रोकना चाहिए, जिससे शीलव्रत में रहने से तुम्हारी प्रशंसा हो।' इस प्रकार माता को बारम्बार समझाकर तुरन्त ही उसके महल से निकल गया और चिन्तित होकर वन में चला गया। वहाँ एक श्रीवरसागर नामक अवधिज्ञानी मुनिराज विराजमान थे। प्रद्युम्न ने उन्हें प्रणाम करके माता के विकारी परिणाम, जो कि गुप्त थे, वे मुनिराज से कहे और पूछा—'हे भगवन! वह मुझमें आसक्त क्यों हुई है?'

प्रद्युम्न की बात सुनकर मुनिराज ने कहा—'हे कुमार! कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता। स्नेह और वैर सब पूर्व जन्म के सम्बन्ध से होता है। हे वत्स! पूर्व जन्म में जब तू मधु नामक राजा था, तब तुमने हेमरत की स्त्री चन्द्रप्रभा को बलजोरी से अपनी रानी बनाया था। वहाँ से प्रसंग पाकर तप करके दोनों स्वर्ग में गये और वहाँ

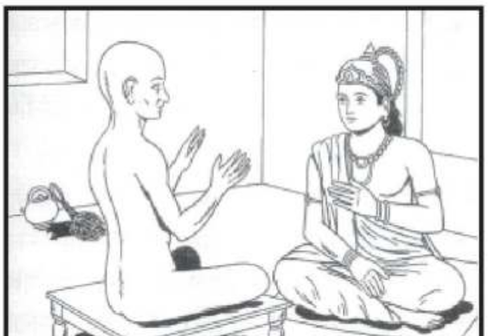

से चन्द्रप्रभा, कनकमाला हुई और मधु का जीव तू श्रीकृष्ण और रुक्मणी का पुत्र प्रद्युम्न हुआ। इस समय पूर्व के मोहवश तुझे देखकर कनकमाला अतिशय सन्तापित हुई है क्योंकि मोह महा कठिनाई से छोड़ा जा सकता है। वह तुझे मोह के वश होकर दो विद्यायें देना चाहती है, जो तुझे शीघ्र ले लेना चाहिए।'

मुनिराज के वचन सुनकर उसने मुनिराज को प्रणाम किया और कहा कि—'हे प्रभो! आपके वचनों का मैं पालन करूँगा। प्रभु! मुझे अभी एक शंका है, उसका समाधान करने की कृपा करें। मेरी माता रुक्मणी को जो दु:ख आ पड़ा है, वह मेरे कारण है या माता के पाप के उदय से है?'

मुनिराज ने कहा—'हे वत्स! सुन, तेरी माता को तेरा विरह उसके अपने पूर्व के पाप के उदय से हुआ है। वह कथा इस प्रकार है, जिसे तू ध्यान देकर सुन।'

❖ ❖ ❖

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक मगध नामक देश है। उस देश में एक लक्ष्मी नाम का एक गाँव है। जिसमें सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण राजा रहता था। उसके कमला नाम की पत्नी थी। उन दोनों के लक्ष्मीवती नामक पुत्री थी, जिसे अपने रूप के कारण महा अभिमान रहता था। एक दिन एक महा तपस्वी मुनिराज एक मास के उपवास का पारणा करने के लिये उसके घर की ओर पधारे। उसी समय लक्ष्मीवती अपना मुख दर्पण में देख रही थी, तभी पीछे से आये हुए मुनिराज का कृश शरीर देखकर लक्ष्मीवती ने मुनिराज की अपने मन में बहुत निन्दा की, जिसके फल में थोड़े ही समय में उसे कुष्ठ हुआ और दु:ख सहन

नहीं कर सकने से वह अग्नि में गिरकर मरण को प्राप्त हुई। मरकर आर्तध्यान के फल में गधी हुई; वहाँ से मरकर गृह सूकरी हुई; वहाँ भी कोतवाल के मारने से कुतिया हुई। एक दिन शीत ऋतु में अपने बच्चों सहित वह कुतिया घास में बैठी हुई थी, तभी अचानक घास में आग लग जाने से बच्चों के मोहवश बाहर नहीं निकल सकी और आग में जलकर मर गयी। वहाँ से मरकर पाप के फल में भेकनिगम नगर में धीवरी की पुत्री हुई। उसका शरीर अतिशय निन्द्य और दुर्गन्धयुक्त था। उसके शरीर की दुर्गन्ध उसके घर के लोगों से भी सहन नहीं होती थी, इसलिए उसे घर से निकाल दिया था। सत्य यही है कि पापियों को सुख कहाँ से प्राप्त हो सकता है।

अपने परिवार के लोगों से भी ठोकर खाकर वह गंगा नदी के किनारे एक झोपड़ी बनाकर रहने लगी। वहाँ लोगों को नाव के सहारे नदी पार कराकर पैसा प्राप्त कर अपनी जीविका चलाती थी। वहाँ रहकर कमाये हुए धन में से थोड़ा द्रव्य अपने पिता को घर भेजती थी। वहाँ रहते हुए उसका नाम दुर्गन्धा पड़ गया। एक दिन माघ महीने के संध्या समय जब अतिशय शीत पड़ रही थी, तब उस नदी के किनारे वे ही मुनिराज पधारे, जिनकी दुर्गन्धा ने पूर्व भव में निन्दा की थी। मुनिराज तो कोई एक स्वच्छ स्थान में विराजमान हो गये।

दुर्गन्धा ने उन मुनिराज को देखा और विचार किया कि मैं यहाँ झोंपड़ी में अग्नि प्रगटाकर और कपड़े पहिनकर रहती हूँ, तथापि मुझे शीत लगती है तो ये योगीराज ऐसी शीत में बाहर किस प्रकार रह सकेंगे? ऐसा विचारकर वह रात के समय

मुनिराज के निकट गयी और मुनिराज के बगल में अग्नि सुलगा दी तथा गर्म वस्त्र पहनाकर शीत का निवारण करने लगी। इस प्रकार पूरी रात जागृत रहकर व्यतीत की।

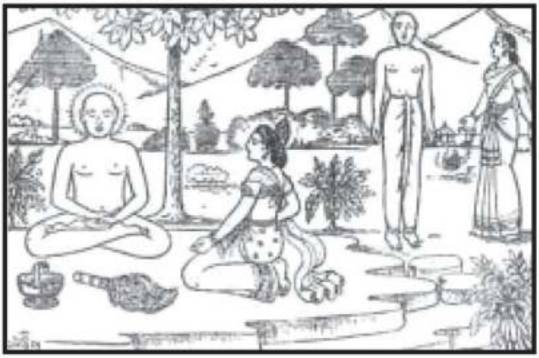

प्रात:काल होने पर मुनिराज ने ध्यान छोड़ा और दुर्गन्धा को देखकर कहा— सोमशर्मा ब्राह्मण की पुत्री, बेटी लक्ष्मीवती! तू कुशल तो है न? दुर्गन्धा ने मन में विचार किया कि ये सत्यवचन बोलनेवाले मुनिराज मुझे किस नाम से बुलाते हैं और क्या कहते हैं? विचार करते-करते अचानक वह मूर्च्छित हो गयी। उसी समय उसे जातिस्मरणज्ञान हो गया। थोड़ी देर वह अपने पूर्व भवों का चिन्तवन करने लगी। जागृत होकर मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके अतिशय रुदन करने लगी। उसने मुनिराज से कहा—'हे नाथ! यह मेरी क्या दुर्दशा हुई? कहाँ तो वह ब्राह्मणी का भव और कहाँ तो यह धीवरी का जन्म? हे विभो! मुनि निन्दा के प्रभाव से जो महापाप बाँधा था, उस पाप के फल से ही मैं भवभ्रमण कर रही हूँ।'

दयावान योगीराज ने उस रोती हुई धीवरी से कहा—'हे पुत्री! दु:खी न हो, क्योंकि यह दु:ख ही संसार बढ़ानेवाला है। अब तू जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित धर्म को धारण कर। यह जीव पूर्व में कमाये हुए कर्मों का फल भोगता है, इसलिए मुनि

निन्दा के फल में तू निम्न कुल में जन्मी है। अब तू गृहस्थ धर्म में अनुरक्त होकर दयामयी धर्म को धारण कर।' ऐसा कहकर मुनिराज ने उसे सम्यक्त्वसहित बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म का स्वरूप समझाया। तत्पश्चात् मुनिराज ने दुर्गन्धा को आशीर्वाद प्रदान किया और स्वयं विहार कर गये। दुर्गन्धा भी आर्यिका के साथ रहने लगी।

एक दिन राजगृही नगरी के बाहर गुफा में दुर्गन्धा ध्यान लगाकर बैठी हुई थी। रात्रि के समय एक व्याघ्र आया और दुर्गन्धा को खा गया। ध्यान के प्रभाव से मरकर दुर्गन्धा सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र की इन्द्राणी होकर चिरकाल तक सुख भोगकर अन्त में आयु के क्षय होने से वह दुर्गन्धा का जीव स्वर्ग में से चयकर कुण्डनपुर नगर के राजा भीष्म की रुक्मणी नामक गुणवती पुत्री हुई।

❖ ❖ ❖

यह सुनकर प्रद्युम्न ने मुनिराज से पूछा—'हे प्रभो! मेरे कैसे कर्म के उदय से अपनी माता से मेरा विरह हुआ है?' तब यतिराज ने कहा—'इसमें तेरा पाप का उदय नहीं, परन्तु तेरी माता ने, जब वह लक्ष्मीवती नामक ब्राह्मण पुत्री थी, तब उसने सोलह घड़ी तक मोर के बच्चे को उससे अलग रखा था; इसलिए उस पाप के फल में सोलह वर्ष तक पुत्र का विरह हुआ है। हे वत्स! इस प्रकार धर्म-अधर्म का स्वरूप समझकर पाप को दूर से ही छोड़ना चाहिए।'

मुनिराज के वचन सुनकर, उन्हें नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार आनन्दसहित कनकमाला माता के महल में गया। कनकमाला

के निकट जाकर उसने माता को नमस्कार किये बिना ही उसके निकट बैठ गया। यह देखकर कनकमाला विचार करने लगी कि निश्चय ही प्रद्युम्न उसके मोहजाल में फँस गया है। अब मैं उसे जैसा कहूँगी, वैसा मेरे साथ भोग भोगेगा, इसमें सन्देह नहीं है। ऐसा विचारकर उसने प्रद्युम्न को कहा—'हे महाभाग कामदेव! यदि रमणीय और मनोहर वचन अनुसार रमण करोगे तो मैं तुम्हें रोहिणी आदि समस्त मन्त्र सीखा दूँगी।'

यह सुनकर प्रद्युम्न ने कहा—'क्या आज तक मैंने तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन किया है? कृपा करके रोहिणी आदि मन्त्रगण प्रदान करें। आप दें या न दें परन्तु मैं तुम्हारे कहे अनुसार कार्य अवश्य करूँगा।' प्रद्युम्न की बात में आकर कनकमाला ने समस्त मन्त्रगण विधिपूर्वक प्रद्युम्न को प्रदान किये। प्रद्युम्न ने उन मन्त्रों को विधिपूर्वक ग्रहण किया और कनकमाला से कहा—'हे पुण्यरूपे! जब मैं जंगल में निराधार शिला के नीचे दबा हुआ था, तब मुझे मेरे माता-पिता शरण नहीं हुए थे; उस समय आप दोनों ने मुझे बचाया था; इसलिए निश्चित ही आप मेरे माता-पिता हैं। इसलिए पुत्र के योग्य जो कुछ कार्य हो, वह मुझे कहें, मैं अवश्य करूँगा।'

वज्रपात समान प्रद्युम्न के वचन सुनकर कनकमाला अत्यन्त क्रोधित हुई। अपने को ठगाया हुआ जानकर वह प्रद्युम्न से कुछ कहे, उससे पूर्व ही प्रद्युम्न, कनकमाला को नमस्कार करके अपने महल की ओर गमन कर गया। कनकमाला अत्यन्त दुःखी हो गयी। विद्यायें चली जाने से वह अत्यन्त चिन्तित हो गयी और जैसे बने वैसे प्रद्युम्न को मारने का विचार करने लगी। थोड़ी देर

विचार करके उसने अपने हाथ से ही अपने वस्त्र फाड़ लिये, अपने बाल नोंच लिये और आँखों का काजल मुख में लगाकर रोते-रोते राजा के निकट गयी और दुःख से गद्गद् होकर कहने लगी—'हे महाभाग! तुमने मुझे जिस बालक का पालन करने के लिये कहा, उसने ही मेरे साथ मेरा यौवन देखकर ऐसी कुचेष्टा की है। वह दुष्ट बुद्धि अवश्य नीचकुल में पैदा हुआ है, यदि वह नीच न हो तो माता के विषय में ऐसी पापबुद्धि नहीं करता। आपके पुण्य के प्रभाव से और मेरे भाग्य से मेरे शील की रक्षा हुई है। अब मैं जब उस दुष्ट का मस्तक रक्त से लथपथ देखूँगी, तब ही अपने जीवन को धन्य समझूँगी।'

कनकमाला के वचन सुनकर कालसंवर के क्रोध का पार नहीं रहा। उसने अपने समस्त पुत्रों को एकान्त में बुलाया और कहा कि इस पापी प्रद्युम्न को तुम सब एकत्रित होकर मार डालो। किसी को पता न पड़े इस प्रकार से मारना। पिता के वचन सुनकर सभी पुत्र प्रसन्न हो गये। पिता को प्रणाम करके सभी पुत्र प्रद्युम्न के समीप गये और लोकापवाद न हो, इसलिए जलक्रीड़ा के बहाने वापिका के समीप ले गये। समस्त भाई वापिका में कूदने के लिये वस्त्र बदलकर एक वृक्ष पर चढ़ गये।

इतने में प्रद्युम्नकुमार के पुण्ययोग से विद्या ने आकर उनके कान में कहा—'हे महाभाग वत्स! ये सभी तुम्हारे भाई वैरभाव से तुम्हें मारने के लिये यहाँ लाये हैं, इसलिए तुम उनके साथ वापिका में कूदकर जलक्रीड़ा नहीं करना; मैं तुम्हारे हित की इच्छुक हूँ।'

विद्या के ऐसे वचन सुनकर कुमार आश्चर्यचकित हो गया।

उसने शीघ्र ही विद्या की सहायता से अपना दूसरा रूप बनाया और स्वयं अदृश्य होकर कौतुक देखने लगा। इतने में वृक्ष पर जो नकली प्रद्युम्न था, वह वापिका में कूद पड़ा, उसे पानी में गिरते देखकर समस्त भाई उसे मारने के लिये कूद पड़े। जब वे सभी भाई एक साथ उसे मारने के लिये वापिका में कूदे, तब प्रद्युम्न को वह दृश्य देखकर अत्यन्त क्रोध आया। वह विचार करने लगा कि ये सब मुझे मारने के लिये क्यों तैयार हुए हैं? पिता की आज्ञा से मारने आये होंगे? कदाचित् माता के उकसाने से ही मुझे मारने आये होंगे। ऐसा विचार कर विद्या की सहायता से वापिका जितनी एक बड़ी शिला लाकर वापिका को ढँक दिया। सबको उसमें उल्टे लटका दिया। मात्र एक भाई को पिता के पास भेजा और कहा कि मैंने जो कुछ किया है, वह समाचार पिताजी को दे देना।

उसने जाकर पिता कालसंवर से समस्त वृत्तान्त कह दिया। अपने पुत्रों को वापिका के जल में बँधा हुआ जानकर राजा बहुत क्रोधित हुआ। वह तत्काल हाथ में तलवार लेकर प्रद्युम्न को मारने के लिये खड़ा हो गया। यह देखकर मन्त्रियों ने राजा को रोका और कहा—'हे नाथ! जिसने तुम्हारे पाँच सौ पुत्रों को वापिका में बाँधा है तथा जिसे अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं, वह तुम्हारे अकेले से विजित नहीं हो सकता, इसलिए विशाल सेना सहित जाना चाहिए।' मन्त्रियों की बात मानकर राजा विशाल सेनासहित युद्ध के लिये रवाना हो गया।

इस ओर प्रद्युम्नकुमार विचार कर रहा था कि पिता की मूर्खता तो देखो कि वे एक स्त्री की बात में आकर मुझे मारने के

लिये तैयार हुए हैं। दिशाओं को व्याप्त करनेवाली विशाल सेना को देखकर प्रद्युम्नकुमार को पिता की मूर्खता पर किंचित् हास्य हुआ और अपने देवों को याद करके विद्या की सहायता से बहुत विशाल सेना तैयार की।

दोनों ओर की सेनायें आमने-सामने आ गयीं। रणभेरी बजते ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर की सेना एक-दूसरे के साथ युद्ध करने में मग्न थीं। थोड़ी देर में ही प्रद्युम्न की सेना ने कालसंवर की सेना को चारों ओर से घेरकर समाप्त कर दिया। कालसंवर विचार करने लगा कि अब मुझे प्रद्युम्न को किस प्रकार जीतना? उसे अचानक विचार आया कि रानी के पास दो विद्यायें हैं, उन विद्याओं के सामने प्रद्युम्न खड़ा नहीं रह सकेगा।

महाराज कालसंवर ने तुरन्त ही मन्त्री को बुलाया और कहा कि तू थोड़ी देर मेरे स्थान को संभालकर युद्ध कर। मैं अभी नगर में जाकर रानी से दो विद्यायें लेकर आता हूँ और आकर इसे जीतूँगा। ऐसा कहकर राजा अपने नगर में गया और उसके स्थान पर मन्त्री युद्ध करने लगा।

नगर में पहुँचकर राजा कालसंवर ने महल में जाकर अपनी रानी से रोहिणी और प्रज्ञप्ति नामक दो विद्यायें माँगी और कहा कि मुझे शीघ्र ही वे दोनों विद्यायें दे, जिससे मैं इसी समय शत्रु को मारकर तेरी इच्छा पूर्ण करूँगा।

राजा की बात सुनकर रानी कनकमाला स्त्रीचरित्र बनाकर कपट से रुदन करने लगी। राजा समझ गया कि इस पापिनी ने निश्चित ही विद्या किसी को दे दी है। ऐसा विचार कर पुनः राजा ने कहा कि तू रुदन क्यों कर रही है? मुझे जल्दी विद्या दे दे। तब

अधिक जोर से रोते-रोते कपटी कनकमाला बोली—'हे नाथ! उस पापी ने मुझे एक बार नहीं परन्तु अनेक बार ठगा है। वह जब बालक था, तब एक दिन दूध पिलाते हुए मैंने विचार किया कि यह बड़ा होकर अपनी रक्षा करेगा, ऐसा विचारकर मैंने दूध द्वारा दोनों विद्यायें उसे दे दीं। मुझे कहाँ पता था कि वह बड़ा होकर ऐसा पाप आचरण करेगा।'

यह ढोंग देखकर राजा ने उसे दुश्चरित्र जान लिया। वह मन में विचार करने लगा कि अहो! स्त्रियों के चरित्र का वर्णन कौन कर सकता है!! इसने दोनों विद्यायें तो गँवायी ही, साथ ही पुत्र भी गँवा दिया। ऐसी अवस्था में मुझे जीवन से कुछ प्रयोजन नहीं है। अब तो प्रद्युम्न के सन्मुख जाकर शीघ्र ही मरण को प्राप्त हो जाऊँगा।

इस प्रकार विचार करते हुए राजा महल में से निकलकर रणभूमि में जहाँ प्रद्युम्न था, उसके समीप गया और कहा—'तू पहले बाण चला, क्योंकि एक तो तू बालक है और दूसरा युद्ध विद्या से अपरिचित है।' तब प्रद्युम्न ने कहा—'हे तात! स्त्री की बात में तल्लीन हुए मूर्ख पिता को मैं नहीं मार सकता; इसलिए पहले आप ही बाण चलाओ, जिससे मेरा दोष न रहे।' यह सुनकर कालसंवर ने महादुःखी होकर पुत्र पर बाण चलाया। प्रद्युम्न ने भी उसका सामना किया। परस्पर दोनों में बहुत समय तक युद्ध चला। अन्त में प्रद्युम्न ने नागपाश में पिता को बाँधकर अपनी बगल में रखा और शर्म से मुख नीचा करके बैठ गया।

उसी समय नारदजी आकाश में से नृत्य करते-करते नीचे उतरे और आकर प्रद्युम्न से मिले। उन्होंने जानते होने पर भी

पूछा कि यह युद्ध किसलिए हुआ? तब प्रद्युम्न ने प्रारम्भ से अन्त तक की समस्त वार्ता, पिता सुन सके उस प्रकार से कह सुनायी। यह सुनते ही नारदजी ने अपने कान बन्द कर लिये और कहा—'हे वत्स! यह लोक निन्द्य चर्चा अब बन्द कर। वह दुष्टा कुपित होकर अपने से प्रीति करनेवाले अपने पति को, पिता को, पुत्र को, भाई को तथा गुरु को मार डालती है।'

नारदजी की बात सुनकर प्रद्युम्न ने उनसे कहा—'अब मैं पितारहित हो गया हूँ; अब मैं किसके पास जाऊँ? यह कालसंवर महाराज निश्चय ही मेरे पिता हैं और मुझे दूध पिलानेवाली कनकमाला ही मेरी माता है परन्तु उसने ही मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, अब मैं कहाँ जाऊँ? मैं अनाथ हो गया।'

प्रद्युम्न की बात सुनकर नारदजी कहने लगे—'हे वत्स! तू खेद न कर। द्वारिका के स्वामी श्रीकृष्ण नामक नारायण तेरे पिता हैं और रुक्मणी नाम की जिनकी पटरानी है, वह तेरी माता है। उन्होंने बहुत ही आदर से तुझे लाने के लिये मुझे यहाँ भेजा है; इसलिए अब तू मेरे साथ चल।

नारद के वचनों में श्रद्धा रखकर और उनके ही कहने से प्रद्युम्न ने राजा कालसंवर को नागपाश में से मुक्त किया।

महाराज कालसंवर न तो नारद से कुछ कह सकते थे और न तो प्रद्युम्न से कुछ कह सकते थे। अन्त में दीन और मलिन मुख करके नगर में वापिस चले गये। नगर में जाकर कनकमाला को कहा—'इसमें तेरा कोई दोष नहीं है। पूर्व में जो कर्म बाँधे हैं; उनका ही फल प्राप्त होता है; इसलिए कर्म के उदय में न तो दुःखी होना चाहिए अथवा न तो सुखी होना चाहिए।'

उसी समय उनके पाँच सौ पुत्र गर्वरहित होकर घर आये, जिन्हें दयालु प्रद्युम्न ने मुक्त किया था।

❖ ❖ ❖

आचार्य कहते हैं कि—**जगत में पापियों की कभी जय नहीं होती, धर्मात्माओं की ही जय होती है; इसलिए भव्य पुरुषों को दूर से ही पाप का त्याग करना चाहिए। जीव को पुण्य के उदय से ही मनुष्य लोक और स्वर्गलोक सम्बन्धी सुख प्राप्त होता है। इसलिए भव्य पुरुषों को निरन्तर धर्म-पुण्य करते रहना चाहिए तथा पाप का सर्वथा त्याग करना चाहिए, क्योंकि ऐसा कौन सा दुःख है जो पाप से उत्पन्न नहीं होता? अर्थात् समस्त दुःख पाप के फल से होते हैं।**

❖ ❖ ❖

तत्पश्चात् नारदजी ने प्रद्युम्नकुमार से कहा—'हे वत्स! अब बिना विलम्ब द्वारिकानगरी जाना चाहिए।' तब कृतज्ञ कुमार ने कहा कि—'माता-पिता से पूछे बिना जाना उचित नहीं है। इसलिए आप यहीं रहो, मैं इसी समय नगर में जाकर माता-पिता से पूछकर अभी आपके पास वापिस आता हूँ।' ऐसा कहकर नारदजी को वहीं छोड़कर स्वयं जहाँ कालसंवर और कनकमाला बैठे हुए थे, वहाँ गया और माता-पिता को प्रणाम करके कहा—'हे महाभाग पिता! आप जैसे मानते हो, वैसे मैंने अज्ञानता में जो अनिष्ट कर्म किया है, वह क्षमा करो। क्योंकि जो दीन है, अनाथ है तथा पराधीन है, उस पर सज्जन पुरुष कभी भी कोप नहीं करते। हे नाथ! मैं आपका किंकर हूँ, क्योंकि आपके आधार से ही जीवित रहा हूँ और आज भी जीवित हूँ। इसलिए मुझ पर कृपा करो और मुझे क्षमा प्रदान करो।

हे माता! आप भी मुझ बालक के पापकार्यों को क्षमा करो। अब मैं आप दोनों की आज्ञा से माता-पिता के घर उनसे मिलने जा रहा हूँ; इसलिए मुझे आज्ञा प्रदान करो। मैं बिना आपकी आज्ञा नहीं जाऊँगा। हे पिता! मैं आपका बालक हूँ, इसलिए निरन्तर मेरा स्मरण रखना। वहाँ माता-पिता से मिलकर शीघ्र वापस आ जाऊँगा। हे नाथ! आप मेरे महल को सर्वथा सुरक्षित रखना। मैं हमेशा के लिये यहीं आकर मिलूँगा। हे माता! तुम्हें भी मुझ पर सदा प्रसन्न दृष्टि रखना चाहिए क्योंकि पुत्र भले कुपुत्र हो जाये, परन्तु माता कभी भी कुमाता नहीं होती! तुम्हें ऐसा विचार करना चाहिए कि मैं तुम्हारे उदर से ही जन्मा हूँ। मैं तुम्हारा ही पुत्र हूँ, इसमें संशय नहीं है।' वे दोनों ने प्रद्युम्न की सभी बातें सुनते रहे किन्तु लज्जावश कुछ उत्तर नहीं दे सके। प्रद्युम्न बारम्बार माता-पिता को नमस्कार करके तथा भाईयों, मन्त्रियों आदि सबसे मिलकर नारदजी के निकट पहुँच गया।

नारदजी के समीप पहुँचकर प्रद्युम्न ने नारदजी से पूछा—'हे तात! यहाँ से द्वारिका कितनी दूर है?' तब नारद ने कहा—'यह विद्याधरों की भूमि है और द्वारिका तो मनुष्यों की नगरी है, इसलिए बहुत दूर है।'

'मैं अभी ही शीघ्रगामी विमान बनाता हूँ, उसमें बैठकर हम शीघ्रता से द्वारिका पहुँच जायेंगे'—नारदजी ने कहा। ज्यों ही नारदजी द्वारा बनाये गये विमान में बैठने के लिये प्रद्युम्न ने पैर रखा कि तुरन्त विमान टूट गया। तत्पश्चात् प्रद्युम्न ने अपनी विद्या से दूसरा विमान बनाया, जिसमें दोनों बैठ गये और तुरन्त ही द्वारिका जाने के लिये रवाना हो गये। मार्ग में कभी प्रद्युम्नकुमार

विमान को बहुत धीरे चलाता, कभी बहुत शीघ्रता से चलाता तो कभी खड़ा रख देता। इन क्रीड़ाओं से व्याकुल होकर नारदजी ने कहा—'बेटा! इन क्रीड़ाओं से मुझे क्यों आकुलित करता है? तुझे अभी शीघ्रता से घर पहुँचकर अपनी माता से मिलना चाहिए और तेरे माता-पिता ने तेरे लिये बहुत सुन्दर कन्यायें माँग रखी हैं। यदि तू समय पर नहीं पहुँचेगा तो तेरे छोटे भाई का विवाह कर दिया जायेगा।' नारदजी के ऐसे मधुर वचन सुनकर प्रद्युम्न अपने विमान को शीघ्रता से द्वारिका की ओर चलाने लगा।

बहुत मार्ग कट जाने के बाद प्रद्युम्नकुमार ने नीचे पृथ्वी पर एक विशाल सेना देखी। उसने नारदजी से पूछा—'महाराज! यह विशाल सेना किसकी है?' तब नारदजी ने हँसते हुए कहा कि—'यह दुर्योधन की सेना है। पूर्व में दुर्योधन ने अपने लावण्य से भरपूर उदधि नामक पुत्री का विवाह तुम्हारे साथ करना निश्चित किया था परन्तु बाद में तुम्हारा हरण होने के पश्चात् और कुछ भी पता न लगने से दुर्योधन ने अपनी पुत्री तेरे छोटे भाई को वरण करने के लिये भेजी है, उसके साथ ही यह चतुरंग सेना है।'

नारद के इस प्रकार के वचन सुनकर कुमार ने कहा—'हे तात! मुझे इस सेना को निकट से देखने का बहुत मन है। आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं जाकर शीघ्र ही वापिस आता हूँ।' नारदजी ने कहा—'यदि तू वहाँ जाकर कोई चपलता नहीं करता हो तो जा और शीघ्र वापिस आ जा।' कुमार ने प्रणाम किया और विमान को आकाश में ही स्थिर करके स्वयं नीचे उतर गया।

नीचे उतरकर कुमार ने एक भील का रूप धारण किया। उस

भील का रूप बहुत ही भयानक था। उसे देखकर दुर्योधन की सेना के सेवक और युवक राजकुमार परिहास करने लगे और कहा कि—'हे पापी! तू सामने से हट जा और मार्ग छोड़ दे, हमें आगे जाना है। हे दुर्मुख! तू बीच में क्यों खड़ा है?'

तब भील ने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—'मैं यहाँ श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा से कर वसूल करके रहता हूँ; इसलिए मुझे कर चुकाकर ही आगे बढ़ सकोगे।'

भील के उत्तर में राजकुमार ने उसे श्रीकृष्ण महाराज का अनुचर जानकर कहा—'हे भाई! तुझे क्या चाहिए? हाथी, घोड़ा, रथ, अनाज इत्यादि सब हमारे पास है। तुझे जो चाहिए वह ले ले और हमें जाने दे।'

भील ने कहा—'मुझे नहीं पता कि तुम्हारी सेना में सर्वोत्तम और सुन्दर वस्तु क्या है? जो सर्वोत्तम वस्तु तुम्हारे पास हो, वह मुझे प्रदान करके फिर आगे जा सकते हो।'

भील की बात सुनकर कुमार हँसने लगे और उन्होंने कहा—'हमारी सेना में तो राजपुत्री उदधिकुमारी सर्वोत्तम है तो क्या तू उसे ले जायेगा?'

भील ने कहा—'यदि राजपुत्री ही तुम्हारी सेना में सर्वोत्तम हो तो वह मुझे प्रदान कर दो और पश्चात् ही आगे जा सकते हो। मेरी सेना तुम्हें मार्ग में मददरूप होगी।'

तब राजकुमार क्रोधित होकर कहने लगे—'हे पापी! तुझे श्रीकृष्ण महाराज ने कहा हो तो भी क्या है, हम तेरे जैसों को राजकुमारी थोड़े ही दे देंगे!' दूसरे राजकुमार क्रोधित होकर

बोले—'इसके साथ वार्तालाप करने में समय बर्बाद मत करो। इसे रास्ते में से दूर हटाकर आगे चलो।'

राजकुमारों की बात सुनकर प्रद्युम्न ने विद्या की मदद से बहुत ही विशाल विकराल भीलों की सेना तैयार कर ली। दोनों सेनाओं के बीच थोड़े समय युद्ध चला। पश्चात् भीलों ने दुर्योधन की सेना को पराजित कर दिया। भील के वेश में प्रद्युम्न ने उदधिकुमारी को दोनों हाथों से पकड़ा और आकाश में उड़ गया और जहाँ नारदजी विमान में बैठे हुए थे, उनके निकट कुमारी को बैठाकर स्वयं नीचे कुरुवंशियों की सेना की हालत देखने लगा।

उदधिकुमारी, नारदजी को देखकर रुदन करने लगी और उसने कहा—'हे पिता! आप मुझे इस भील से बचाओ, मेरी रक्षा करो। अरे! आप ऐसे पापी के संग में कहाँ से आये? या फिर तुम्हें भी इस पापी ने बन्दी बनाया है? आकाश में उड़ने की विद्या ऐसे दुराचारी को कहाँ से प्राप्त हुई?'

राजकुमारी के ऐसे वचन सुनकर नारदजी ने कहा—'हे पुत्री! तू हर्ष के स्थान में व्यर्थ का शोक मत कर। यह कोई भील नहीं है, यह तो रुक्मणी का ही पुत्र है, जिसे देव हरकर ले गया था। वह आज यहाँ तुझे लेने के लिये ही आया है।' ऐसा कहकर नारदजी ने कुमार को अपने मूलस्वरूप में आने के लिये कहा। तब कुमार ने भील का रूप त्यागकर वह अपने मूलरूप में आया। उसका रूप देखकर कुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई और कुमार में आसक्त हो गयी। कुमार भी उदधिकुमारी के रूप में मोहित हो गया परन्तु नारदजी की उपस्थिति के कारण संकोच होने से दोनों

शान्त होकर अपने भाव को दबाकर बैठे रहे। विमान में वे नारद मुनि के साथ प्रसन्नता से वहाँ से आगे आकाशमार्ग में गमन करने लगे।

❖ ❖ ❖

थोड़े दूर आगे जाने पर एक विशाल नगरी को देखकर प्रद्युम्न ने नारदजी से पूछा—'हे नाथ! यह कौन सी नगरी है?' नारदजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'हे वत्स! पृथ्वी में अति प्रसिद्ध यही द्वारिका नामक नगरी है, जहाँ श्रीकृष्ण नारायण निवास कर रहे हैं। इस नगरी का वर्णन करने के लिये मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तीन लोक में ऐसी दूसरी कोई नगरी नहीं है।'

नारदजी के मुख से नगरी का वर्णन सुनते ही कुमार को नगरी देखने का मन हो गया और नारदजी की आज्ञा प्राप्त कर तथा किसी प्रकार की चपलता न करने का वचन देकर, उदधिकुमारी और नारदजी को विमान में बैठाकर तथा आकाशमार्ग में ही विमान को स्थिर करके स्वयं नीचे उतर गया।

द्वारिका की भूमि पर प्रद्युम्नकुमार ने जैसे ही पैर रखा, उसे सूर्य समान भानुकुमार के दर्शन हुए। उसे देखकर आश्चर्यसहित प्रद्युम्नकुमार ने अपनी विद्या से पूछा कि यह कुमार कौन है? विद्या ने जवाब दिया कि यह भानुकुमार तुम्हारी माता की सौत का पुत्र है। विद्या के वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार ने शीघ्र ही प्रज्ञप्ति नामक विद्या की सहायता से एक सर्वगुण सम्पन्न घोड़ा बनाया और स्वयं घोड़ा बेचनेवाला वृद्ध बन गया तथा घोड़ा लेकर जहाँ भानुकुमार था, वहाँ गया।

घोड़े को देखकर भानुकुमार प्रसन्न हुआ और पूछने लगा—

'यह किसका घोड़ा है और तू इसे कहाँ से लेकर आया है ?' तब घोड़ेवाले ने कहा—'यह मेरा ही घोड़ा है और मैं तुम्हारे लिये ही यहाँ तक लेकर आया हूँ।'

भानुकुमार ने पूछा—'यदि मुझे बेचने के लिये ही घोड़ा लाये हो तो इसका मूल्य मुझे कह दो।' तब घोड़ेवाले ने कहा—'कुमार! इस घोड़े के लिये मैं एक करोड़ स्वर्ण मोहरें लूँगा। इसलिए पहले घोड़े की परीक्षा करके देख लो कि यह घोड़ा इतना मूल्य देने योग्य है या नहीं ?'

भानुकुमार घोड़े की परीक्षा के लिये शीघ्रता से उस घोड़े पर चढ़ गया और कुशलतापूर्वक चलाने लगा। परन्तु अचानक घोड़े ने अपनी गति बहुत बढ़ा ली और भानुकुमार को उछालकर धरती पर पछाड़ दिया। पश्चात् स्वयं शान्त होकर घोड़ेवाले के निकट जाकर खड़ा हो गया।

यह दृश्य देखकर वृद्ध घोड़ावाला बहुत हँसा और उसने कहा—'हे कुमार! मैंने तो तुम्हारी अश्वकला की महिमा सुनी थी, इसलिए यह घोड़ा मैं तुम्हें बेचने के लिये कितनी दूर से आया था परन्तु आज लगता है कि तुम्हें घोड़ा चलाना आता ही नहीं।' घोड़ेवाले की बात सुनकर भानुकुमार अत्यन्त क्रोधित होकर बोला—'हे मूर्ख बुड्ढे! तुझे जब घोड़ा चलाना नहीं आता तो दूसरों की मजाक नहीं की जाती।' तब वृद्ध ने कहा—'तेरी बात सत्य है, मैं अब वृद्ध हो गया होने से घोड़े पर नहीं चढ़ सकता। यदि तू मुझे अपने साथियों द्वारा घोड़े पर बैठावे तो मैं तुझे मेरा अश्व कौशल बतला सकता हूँ।'

यह सुनकर भानुकुमार ने अपने सुभटों से कहा—'इस

अभिमानी बुड्ढे को घोड़े पर बिठला दो, जिससे मैं इसका कौशल देख सकूँ।'

भानुकुमार के सुभट वृद्ध को उठाकर घोड़े पर रखने गये, वहाँ उस वृद्ध ने अपना वजन इतना बढ़ा लिया कि सबके ऊपर गिरा और अपनी कोहनी से सबकी छाती, मुँह आदि तोड़-मरोड़ डाले। थोड़ी देर बाद उस वृद्ध को उठाया तो उस बार भी इसी प्रकार वह सबके ऊपर गिरा। पश्चात् भानुकुमार अपने सुभटोंसहित वृद्ध को उठाने लगा, वहाँ तो पहले की तरह अपना वजन बहुत बढ़ाकर वह सब पर गिर पड़ा। फिर तुरन्त ही भानुकुमार की छाती पर पैर रखकर घोड़े पर चढ़ गया। तत्पश्चात् उसने अश्व चलाने की अपनी समस्त कुशलता सबको दिखाकर घोड़े को आकाशमार्ग में चलाने लगा और तुरन्त ही सबके नजर के सन्मुख घोड़े के साथ अदृश्य हो गया।

❖ ❖ ❖

वहाँ से आगे जाने पर एक बगीचा आया। विद्या द्वारा प्रद्युम्न को ज्ञात हुआ कि यह सत्यभामा का बगीचा है। उसने विद्या द्वारा पाँच, सात दुर्बल घोड़े बनाये और स्वयं घोड़े बेचनेवाले का रूप बनाकर घोड़े को चराने के बहाने बगीचे में गया और जैसे ही रक्षकों का ध्यान हटा, तुरन्त ही बगीचे को रण बना डाला अर्थात् बगीचे में एक भी वृक्ष नहीं रहा और वापिकायें सूख गयीं।

❖ ❖ ❖

वहाँ से आगे जाने पर दूसरा बगीचा आया, वह भी सत्यभामा का ही बगीचा था। प्रद्युम्नकुमार ने विद्या द्वारा एक अत्यन्त भूखा बन्दर बनाया और स्वयं उसके मालिक का रूप धारण किया।

बगीचे के निकट जाकर रक्षकों को कहा कि—'हे भाई! मेरे बन्दर को एक फल खाने के लिये दो, यह बहुत भूखा है।' रक्षकों ने फल देने से इनकार किया तो कुमार ने बन्दर को खुला छोड़ दिया। बन्दर तो अन्दर बगीचे में गया और अन्दर जाते ही दूसरे सैकड़ों बन्दर हो गये और उस बगीचे को भी उजाड़ कर डाला।

❖ ❖ ❖

आगे चलकर सत्यभामा की एक सुन्दर वापिका आयी। प्रद्युम्नकुमार ने विद्या के बल से ब्राह्मण का रूप धारण कर उस वापिका का जल अपने कमण्डल में भरकर रख लिया और रक्षक स्त्रियों को ठगकर आगे गमन किया। आगे बाजार में पहुँचते ही वहाँ भी गड़बड़ करने लगा। जवाहरात की दुकान को कौड़ी बेचनेवाला बनाया और कौड़ी के व्यापारी को जवाहरात का व्यापारी बनाया; हलवाई को कपड़ा बेचनेवाला बनाया और कपड़े बेचनेवाले को हलवाई बनाया; हाथी जगह गधेड़ा रखा और गधेड़े की जगह हाथी लाया। इत्यादि प्रकार की चेष्टा करते हुए कुमार आगे बढ़ने लगा।

❖ ❖ ❖

ब्राह्मण का वेश धारण करके आगे जाकर देखता है कि चार रास्तों पर कितने ही माली भानुकुमार के विवाह के लिये फूल की माला बना रहे हैं। ब्राह्मण के रूप में रहे हुए कुमार ने माली से थोड़े फूल माँगे परन्तु माली ने उसमें से एक फूल तो क्या परन्तु फूल की पंखुड़ी भी देने से इनकार कर दिया। तब क्रोधित होकर ब्राह्मण ने एक फूल को हाथ लगाया कि तुरन्त ही वे

मन्दर, पारिजात, बकुल, कुमुद, चम्पा, कमल, नागकेशर, जूही इत्यादि के सभी फूल आँकड़े के फूल बन गये।

इस प्रकार अनेक प्रकार के कौतुक करते हुए प्रद्युम्नकुमार आगे बढ़ता गया। मार्ग में एक बड़ा महल आया। विद्या द्वारा कुमार को ज्ञात हुआ कि यह महल श्रीकृष्ण महाराज के पिता अर्थात् अपने दादा वसुदेव का है। कुमार ने विद्या से पूछा कि उन्हें क्या प्रिय है ? विद्या ने कहा कि उन्हें भेड़ की लड़ाई देखना बहुत प्रिय है। तब कुमार ने विद्या से एक अतिबलवान भेड़ बनाया और उसे लेकर वासुदेव महाराज की सभा में गया। महाराज को प्रणाम करके खड़ा रहा। अपने दादा को देखकर कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। महाराज वासुदेव भी उस युवक पुरुष को भेड़ के साथ देखकर प्रसन्न हुए।

वासुदेव महाराज ने युवक से पूछा कि—'हे वत्स! यह भेड़ किसका है और यहाँ किसलिए लाया गया है ?' कुमार ने कहा—'यह भेड़ मेरा है और यहाँ आपके लिये ही लाया गया है। आप भेड़ का युद्ध देखने के शौकीन हैं और आपके समान भेड़ की कसौटी करने में कोई चतुर नहीं है। यह भेड़ बहुत ही बलवान और दुर्जय है।' वासुदेव महाराज ने कहा—'यदि यह वास्तव में दुर्जय है तो मेरी जाँघ पर टक्कर लगाने के लिये छोड़ दे। यदि यह मेरी जाँघ तोड़ डाले तो समझना कि इसके समान कोई बलवान भेड़ नहीं है।' युवक पुरुष ने महाराज से अभयदान माँगा और फिर भेड़ को महाराज की जाँघ को टक्कर मारने के लिये छोड़ दिया। जाँघ पर भेड़ की टक्कर लगते ही महाराज बेहोश हो गये। सेवक तो उन्हें चन्दन आदि छिड़ककर जागृत

करने में लगे, इतनी देर में कुमार वहाँ से भी निकल गया।

❖ ❖ ❖

नगरी को देखते हुए आगे एक महल आया। विद्या ने कहा कि यह सुन्दर महल महारानी सत्यभामा का है। यह सुनकर कुमार ने एक चौदह वर्ष के बालक का रूप धारण किया और अन्दर जाकर महारानी सत्यभामा के निकट गया और भोजन के लिये याचना करने लगा। भानुकुमार के विवाह के लिये जितना भोजन बनाया गया था, वह सब कुमार ने विद्या के बल से क्षणभर में भक्षण कर लिया और वहाँ से भी निकल पड़ा।

थोड़े दूर आगे चलकर देखता है तो दूसरा एक सुन्दर महल आया। विद्या ने कहा कि यह सुन्दर महल तुम्हारी माता रुक्मणी का है। अपनी माता का घर देखकर कुमार बहुत ही प्रसन्न हुआ। कुमार ने उसी समय एक क्षुल्लक का वेश धारण किया। जिसका शरीर दुबला-पतला और कुरूप था, जिसके दाँत बड़े थे, मुख दुर्गन्धयुक्त था, पूरा शरीर कुलक्षणयुक्त था। ऐसा रूप बनाकर कुमार अपनी माता के महल में पहुँच गया।

क्षुल्लक का वेश धारण करनेवाले पुरुष को आते देखकर जिनधर्म में रुचि रखनेवाली रानी रुक्मणी अपने स्थान से खड़ी हो गयी और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। रुक्मणी ने क्षुल्लक महाराज को सिंहासन पर विराजमान किया और स्वयं नीचे बैठ गयी। थोड़े समय तक दोनों ने धर्मचर्चा की। तत्पश्चात् क्षुल्लक महाराज ने कहा—'मैं बहुत दूर से आया हूँ और मुझे भूख लगी है।' रुक्मणी रसोई में भोजन लेने के लिये गयी, परन्तु क्षुल्लक महाराज ने पहले से ही विद्या द्वारा सब भोजन गायब कर दिया

था तथा अग्नि को भी स्तम्भित कर दिया था। श्रीकृष्ण के लिये रखे हुए लड्डू, जो वे अकेले ही एक-एक खाते थे, वे दस पड़े हुए थे। रुक्मणी दुविधा में पड़ गयी कि यदि क्षुल्लक महाराज को यह लड्डू दूँगी तो पाचन नहीं होने से वे मर जायेंगे और यदि नहीं दूँगी तो भूख से मर जायेंगे। इस प्रकार दुविधा होने पर भी अन्त में एक लड्डू दिया। इस प्रकार एक के बाद एक दस लड्डू वे महाराज खा गये। भोजन से सन्तुष्ट होकर रुक्मणी को आशीर्वाद प्रदान किया और बाहर दूसरे आसन पर जाकर विराजमान हो गये।

❖ ❖ ❖

अब, सीमन्धर भगवान ने प्रद्युम्न के आगमन-समय के जो चिह्न बतलाये थे—जैसे कि सूखा हुआ अशोकवृक्ष हरा-भरा हो जाना, मूक व्यक्ति बोलने लगना, कुरूपवान लोग सुन्दर हो जाना, अन्ध लोग सूझते हो जाना—इत्यादि चिह्न देखकर रुक्मणी विचार करने लगी कि इस समय मेरा पुत्र यहाँ आना चाहिए परन्तु पाप के उदय से अभी मुझे दिखायी नहीं देता। उसे विचार आया कि यह क्षुल्लक ही मेरा पुत्र होना चाहिए। यही विद्या के बल से मुझे हैरान करने के लिये रूप बदलकर आया होगा। ऐसा विचारकर उसने क्षुल्लक से कहा कि—'तू क्षुल्लक नहीं लगता। तू नारदजी के साथ आया होना चाहिए, इसलिए तू मेरा पुत्र ही है। अब मुझे अधिक परेशान मत कर।'

यह सुनकर क्षुल्लक के वेश में आये हुए प्रद्युम्न ने कहा कि—'हाँ; मैं ही नारदजी के साथ आया हूँ, मैं ही तेरा पुत्र हूँ परन्तु ऐसा कुरूप पुत्र तो दुःख का कारण बनता है, इसलिए मुझे

रोकना नहीं। मैं अन्यत्र कहीं रहकर जीवन व्यतीत कर लूँगा।'

पुत्र के वचन सुनकर रुक्मणी की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—'बेटा! मैंने तुझे सोलह वर्ष के बाद देखा है। अब तुझे कहीं जाना नहीं है। तू जैसा है, वैसा मेरा ही पुत्र है! उसमें मुझे दुःखी होने का कोई कारण नहीं है।'

माता के वचन सुनकर प्रद्युम्न ने क्षुल्लक वेश छोड़ दिया और अपने मूलस्वरूप में आ गया। पुत्र का ऐसा कामदेव जैसा रूप देखकर रुक्मणी को सन्तोष नहीं होता था। प्रद्युम्न ने विनयपूर्वक माता के चरणों में प्रणाम किया। रुक्मणी ने उसे तुरन्त ही खड़ा करके छाती से लगा लिया।

रुक्मणी ने कहा—'बेटा! मैं कितनी भाग्यहीन हूँ कि तेरा बालपन मुझे देखने को नहीं मिला।' इस प्रकार माता को दुःखी देखकर प्रद्युम्न ने कहा—'माता! तुझे मेरा बालपन देखना है न, तो मैं तुझे दिखाऊँगा। मेरे लिये कुछ भी कार्य अशक्य नहीं है। मैं सब ही कर सकता हूँ।' ऐसा कहकर तुरन्त ही स्वयं ने छोटे बालक का रूप धारण कर लिया। जो बोल-चल नहीं सकता था। इस प्रकार थोड़ी देर अपनी बाललीला माता को बतलाकर वापस अपने युवा रूप में आ गया।

रुक्मणी ने कहा—'बेटा! मुझे मेरे अकारण बन्धु नारदजी से मिलना है, वे कहाँ हैं?' तब प्रद्युम्न ने कहा कि—'वे तुम्हारी बहू के साथ विमान में बैठे हैं।' फिर प्रद्युम्न ने, उदधिकुमारी को किस प्रकार प्राप्त किया, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् नगर में जो उपद्रव किये थे, वह सब घटनाक्रम भी माता को बतलाया। तत्पश्चात् कुमार ने अपनी माता से कहा कि मुझे

वचन दो कि मैं जो मागूँगा, वह मुझे दोगी। माता ने कहा—'बेटा! बोल न, तुझे क्या चाहिए? जो माँगेगा वह दूँगी।' कुमार ने कहा—'माता! तुम मेरे साथ चलो और विमान में बैठकर नारदजी तथा अपनी पुत्रवधू से मिलो, तब तक मैं मेरे पिताश्री से मिलकर आता हूँ। फिर तुम सबको नीचे लाऊँगा।' माता ने कहा—'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

माता की आज्ञा प्राप्त होते ही प्रद्युम्नकुमार अपनी माता को अपने दोनों हाथों से उठाकर यादवों की राज्यसभा के ऊपर ले गया और बलदेव तथा श्रीकृष्ण के समक्ष कहा—'हे यादवों! हे भोजवंशियों! हे पाण्डवों! यदि तुम सब अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हो और यदि तुमने युद्ध में विजय प्राप्त की हो तो सावधान होकर मेरे वचन सुनो। भीष्म राजा की पुत्री और श्रीकृष्णजी की प्रिय साध्वी स्त्री जो कि रुक्मणी के नाम से प्रसिद्ध है, उसे मैं विद्याधर का पुत्र तुम्हारे सामने ले जाता हूँ। यदि मैं अकेला रुक्मणी का हरण करके ले जाऊँ तो फिर तुम सबके जीवन से क्या प्रयोजन है? यदि तुम्हारे में अद्भुत शक्ति हों तो मुझसे रुक्मणी को छुड़ा लो। हे उत्तम शूरवीरो! तुम सब इकट्ठे मिलकर प्रयत्न करो। निश्चय समझो कि तुमसे युद्ध किये बिना मैं नहीं जाऊँगा। जब युद्ध में तुम्हें जीत लूँगा, पश्चात् श्रीकृष्णजी की भामिनी को विद्याधर के नगर में ले जाऊँगा। मैं चोर नहीं और चिट अर्थात् व्यभिचारी भी नहीं हूँ।'

प्रद्युम्न के वचन सुनकर शूरवीरों लोगों से भरी हुई यादवों की सभा अचानक क्षोभित हो गयी। शूरवीरों को बहुत ही क्रोध आया। तुरन्त ही रणभेरी बजायी गयी और युद्ध की तैयारी हो

गयी। युद्ध के लिये निकले, तब मार्ग में स्वयं की पराजय सूचक अनेक अपशकुन हुए, तथापि उन्हें नजरंदाज करके शूरवीर योद्धा आगे बढ़ते गये।

इस ओर प्रद्युम्नकुमार ने अपनी माता को विमान में ले जाकर बैठा दिया, जहाँ नारदजी और उदधिकुमारी बैठे हुए थे। तत्पश्चात् उन तीनों को विमान में ही बैठाकर कुमार रण में नीचे उतरे और एक विशाल अचरजकारी सेना तैयार की। श्रीकृष्ण की सेना में योद्धाओं के जो नाम थे, वैसे ही नाम, वैसा ही दिखाव, वैसा ही पहनावा आदि प्रद्युम्न की सेना में भी हो गया।

दोनों की सेना आमने-सामने आ गयी और भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस समय आकाश में से देव कौतुक से यह युद्ध देखने लगे। युद्ध में अनेक सुभट कटकर मर गये, अनेक हाथी कट गये, घोड़ों के पैर कट गये। इत्यादि प्रकार से भयंकर रणसंग्राम हुआ। अन्त में इस महायुद्ध में प्रद्युम्न ने अपनी माया से पाण्डवादि को बलदेवसहित मार डाला। यह देखकर श्रीकृष्णजी अत्यन्त क्रोधित हो गये और हाथी छोड़कर रथ पर सवार होकर युद्ध के लिये आगे बढ़ने लगे। स्त्री और बांधवों के वियोग से उत्तेजित होकर अपने शत्रु को बलपूर्वक नष्ट करने की इच्छा से आगे बढ़े।

जब श्रीकृष्णजी का रथ प्रद्युम्न के रथ के सामने आया, तब आडम्बरसहित शत्रु को देखकर श्रीकृष्ण का हृदय प्रेम से भर गया। इसलिए श्रीकृष्णजी ने शत्रु से कहा—'ऐ विचक्षण शत्रु! मेरे वचन सुन; तू मेरी स्त्री को हरनेवाला, बांधवों को मारनेवाला, तथा दूसरे भी अनेक दुष्ट कर्म करनेवाला है, तथापि क्या करूँ?

तुझ पर मेरा अन्तरंग स्नेह बढ़ता जा रहा है; इसलिए तू मेरी गुणवती भार्या को शीघ्र मुझे सौंप दे और मेरे सामने से जीवित कुशलतापूर्वक चला जा।'

यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार ने मुस्कराते हुए कहा—'हे सुभट शिरोमणि! यह कहीं स्नेह का अवसर है? यह तो मारने-काटने का अवसर है। मैं तुम्हारे बन्धुओं का घात करनेवाला और तुम्हारी स्त्री का हरता हूँ, उस पर भी तुम्हें स्नेह आता है तो फिर तुम्हारा शत्रु कैसा होगा? यदि तुम युद्ध कर सको ऐसा न हो तो मुझसे कहो कि हे धीर-वीर! मुझे स्त्री की भिक्षा प्रदान करो।'

ऐसे कटाक्षपूर्ण वचन सुनकर श्रीकृष्णजी क्रोध से लाल-पीले हो गये और हाथ में धनुष लेकर शत्रु पर टूट पड़े। दोनों के बीच भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ने एक-दूसरे पर दिव्य अस्त्र चलाये। श्रीकृष्णजी ने चलाये हुए दिव्य अस्त्र यद्यपि अमोघ थे, कभी भी खाली नहीं जाते थे परन्तु ऐसा नियम है कि दिव्य अस्त्र अपने कुल पर कभी काम नहीं करते। उनके अस्त्र खाली जाने से श्रीकृष्णजी आश्चर्यचकित होकर मल्लयुद्ध करने के लिये तैयार हुए।

दोनों को मल्लयुद्ध के लिये तैयार हुआ देखकर विमान में बैठी हुई रुक्मणी ने नारदजी से कहा—'हे तात! अब आप विलम्ब न करें और शीघ्र इन्हें युद्ध करने से रोकें।' रुक्मणी के भेजने से नारदजी तुरन्त ही श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न के बीच आकर खड़े हो गये और श्रीकृष्ण से कहा—'हे माधव! आपने इस समय अपने पुत्र के साथ ये कैसा कार्य शुरु किया है? यह वही प्रद्युम्नकुमार अपने पिता से मिलने आया है, जो विद्याधर राजा

कालसंवर के घर में बड़ा हुआ है, जिसे सोलह लाभ प्राप्त हुए हैं तथा गुणों का घर है। हे जनार्दन! अपने पुत्र के साथ युद्ध करना आपके लिये योग्य नहीं है।' इसी प्रकार प्रद्युम्न से भी कहा—'हे कामकुमार! तू भी अपने पिता के साथ यह क्या करता है? तुझे भी जगत में पूज्य और स्नेह के गृहस्वरूप पिता के साथ दूसरी चेष्टा छोड़कर पुत्र के लिये जो उत्तम कर्तव्य हो, वह करना चाहिए।'

नारदजी के वचन सुनकर दोनों ने मल्ल की चेष्टा छोड़ दी। श्रीकृष्णजी अपने पुत्र को सोलह वर्ष पश्चात् मिलने से अति प्रसन्न थे परन्तु साथ ही अपने बन्धुओं और सैन्य के नाश से दु:खी भी थे। पिता के भाव प्रद्युम्नकुमार समझ गया। कुमार ने अपने पिता के चरणों में झुककर प्रणाम किया, तब श्रीकृष्ण ने उसे खड़ा करके अपनी छाती से लगाया। दोनों की आँखों में प्रसन्नता के आँसू थे। पश्चात् कुमार ने अपनी विद्या से सम्पूर्ण सैन्य को, निद्रा से जागृत करे उस प्रकार, खड़ा कर दिया। अपने बन्धुओं और सैन्य जीवित देखकर श्रीकृष्ण की प्रसन्नता का पार नहीं रहा, तत्पश्चात् प्रद्युम्नकुमार सबसे यथायोग्य रीति से मिला।

❖ ❖ ❖

जिस समय यहाँ मेल-मिलाप चल रहा था, उसी समय भानुकुमार सेना में से निकलकर शीघ्र अपने घर आया और आकर प्रद्युम्नकुमार की सब बात की। इतने में ही सत्यभामा के सभी नौकरों ने उसके बगीचे, वापिका, वन आदि के सत्यानाश के समाचार दिये। उदधिकुमारी का हरण सुनकर सत्यभामा और भानुकुमार अत्यन्त दु:खी हुए।

❖ ❖ ❖

इस ओर श्रीकृष्णजी ने कहा—'बेटा! अब तू अपनी माता को यहाँ ले आ।' तब कुमार नीचे देखकर कुछ विचार करने लगा और कुछ भी जवाब नहीं दिया। श्रीकृष्णजी ने पुनः पूछा—'तू अपनी माता को क्यों नहीं लाता? नीचे देखकर क्या विचार करता है?' तब नारदजी ने कहा कि—'हे जर्नादन! संसार में अपनी स्त्री सबको प्रिय होती है। तुमने इसकी माता को लाने को कहा, परन्तु इसकी स्त्री को लाने के लिये नहीं कहा। इसलिए यह विचार करता होगा कि अकेली माता को किस प्रकार लाऊँ?' यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने पूछा—'इसे स्त्री कहाँ से मिल गयी? मुझे तो कुछ खबर ही नहीं।' तब नारदजी ने उदधिकुमारी का समस्त वृत्तान्त कह दिया। जिसे सुनकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और कुमार से कहा कि—'हे पुत्र! अपनी माता और स्त्री दोनों को ले आ।'

पिता की आज्ञा मिलते ही प्रद्युम्नकुमार ने विमान को धरती पर उतारा। वह विमान देखकर सभी यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि उनके लिये वह अपूर्व वस्तु थी। विमान में रुक्मणी और उदधिकुमारी दोनों बैठे हुए थे। रुक्मणी ने आकाशरूपी आँगन में से वधू के साथ नीचे आकर दोनों ने अत्यन्त विनय से श्रीकृष्ण को नमस्कार किया। श्रीकृष्णजी दोनों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने रुक्मणी को मन्त्रियों के साथ घर जाकर नगरी का शृंगार करने के लिये कहा। रुक्मणी तुरन्त ही नगर में गयी और पुत्र के आने की प्रसन्नता में सम्पूर्ण नगरी को शृंगारित किया गया।

नगरी का शृंगार होने के पश्चात् श्रीकृष्णजी ने अपने पुत्र प्रद्युम्न के साथ नगर में प्रवेश किया। वे नगरी में घूमकर रुक्मणी

के महल में पहुँचे। अपने सर्वगुणसम्पन्न पुत्र को आया हुआ देखकर रुक्मणी ने आरती उतारकर मंगल क्रिया की। इस समय प्रद्युम्नकुमार के आने से एक सत्यभामा और दूसरा भानुकुमार— इन दोनों के अतिरिक्त सम्पूर्ण द्वारिकानगरी के लोग उत्सव मना रहे थे। सत्यभामा के यहाँ उत्सव के बदले शोक था।

कितने ही दिनों के बाद श्रीकृष्णजी ने मन्त्रियों को कहा— 'हे मन्त्रीवर! अब प्रद्युम्न का विवाह महा-उत्सव के साथ करना चाहिए।' यह सुनकर कुमार ने कहा—'हे तात! महाराज कालसंवर और रानी कनकमाला की उपस्थिति में ही मैं विवाह करूँगा, वरना नहीं करूँगा। वे मेरे पालन करनेवाले सच्चे माता-पिता हैं।'

कुमार का उचित विचार सुनकर श्रीकृष्णजी ने शीघ्र ही एक दूत को कालसंवर महाराज के निकट भेजा। उस दूत ने महाराज कालसंवर को प्रद्युम्न की प्रतिज्ञा सुना दी। महाराज कालसंवर अपनी रानी के साथ चर्चा करके द्वारिका जाने के लिये तैयार तो हो गये परन्तु उनका मन पूर्व कृत्य के कारण थोड़ा व्याकुल था। अन्त में विशाल सेना के साथ अनेक कन्याओं को लेकर तथा रतिकुमारी को उनके पिता के साथ लेकर वे द्वारिका पहुँचे। उनके आने के समाचार सुनकर श्रीकृष्ण, रुक्मणी और प्रद्युम्न ने सामने जाकर उनकी अगवानी की और महा उत्सव के साथ उनका नगर में प्रवेश कराया।

तत्पश्चात् वन में प्रद्युम्नकुमार का रतिकुमारी और उदधिकुमारी सहित पाँच सौ कन्याओं के साथ विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह सम्पन्न होने के बाद सबने नगर-प्रवेश किया। महाराज कालसंवर और रानी कनकमाला बहुत समय तक द्वारिका

में ही रहे। एक दिन महाराज कालसंवर ने हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से अपने नगर में वापिस जाने की आज्ञा चाही। तब श्रीकृष्णजी ने बन्धुओं तथा रुक्मणीसहित अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा कि—'हे राजन! प्रद्युम्न के सच्चे माता-पिता आप ही हैं, इसलिए उसके विषय में भी आपको जो निर्णय करना हो, वह प्रसन्नता से करना।'

तत्पश्चात् राजा-रानी सहित सभी विद्याधरों को यथायोग्य भेंट प्रदान कर थोड़े दूर तक विदा करने गये। मोहवश प्रद्युम्न थोड़े अधिक आगे तक चला गया। तत्पश्चात् माता-पिता को प्रणाम करके वापस अपनी नगरी द्वारिका में आ गया। प्रद्युम्न ने सुखसागर में मग्न रहते हुए व्यतीत होता हुआ समय नहीं जाना।

तत्पश्चात् सत्यभामा ने भी अनेक उत्तम कुल की कन्याओं की माँग करके, उन्हें बुलाकर भानुकुमार के साथ उनका विवाह किया। भानुकुमार ने भी अपनी स्त्रियों के साथ सुख से व्यतीत होते हुए काल को नहीं जाना।

❖ ❖ ❖

संसार में जो कुछ चिन्तनीय और अमूल्य पदार्थ हैं, वे सब पुण्य से ही प्राप्त होते हैं। स्वजनों से मिलाप होना, चिन्तित, पापरहित तथा उत्तम अर्थ की प्राप्ति होना, रात -दिन देवों और मनुष्यों द्वारा सेवा प्राप्त होना, वह सब पुण्यरूप वृक्ष के फल हैं। धर्म से-पुण्य से अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं, निर्मल कीर्ति होती है, विवेक प्राप्त होता है तथा पुण्य ही संसार के क्लेश आदि ताप को हरण करने के लिये चन्द्रमा समान सौम्य है; इसलिए हे बुद्धिमानो! जिन भगवान द्वारा कथित अतिशय कल्याणरूप धर्म की उपासना करो।

❖ ❖ ❖

प्रद्युम्नकुमार के पूर्वभव का छोटा भाई कैटभ सोलहवें स्वर्ग में था, जहाँ अनेक देव उसकी सेवा करते थे। एक दिन जब वह अपने विमान में शान्तिपूर्वक बैठा हुआ था, तब उसे सीमन्धर भगवान के दर्शन करने के भाव हुए। वह तुरन्त ही विदेहक्षेत्र में, जहाँ सीमन्धर भगवान समवसरण में विराजमान थे, वहाँ पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने भगवान की दिव्यध्वनि का लाभ लिया। उसे अपने पूर्वभव जानने का विकल्प आया और भगवान की दिव्यवाणी में उसके उत्तररूप से ब्राह्मण के भव से लेकर इन्द्र तक के भवों का वर्णन आया। देवराज को वापस विकल्प हुआ कि पूर्व का मेरा भाई इस समय कहाँ है? और मेरा उसके साथ मिलाप होगा या नहीं? उसके उत्तररूप भगवान की वाणी में आया कि तेरा पूर्व का भाई अभी द्वारिकानगरी में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में है। तू भी थोड़े ही काल में श्रीकृष्ण के पुत्र और प्रद्युम्न के छोटे भाई के रूप में जन्म लेगा।

भगवान के मुख से अपने भावी पिता और भाई से मिलने की विगत जानकर वह देवराज द्वारिकानगरी में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर सभा में जाकर श्रीकृष्ण को नमस्कार करके अपने जन्म का वृत्तान्त और प्रद्युम्न के साथ पूर्व के सम्बन्ध की बात कहकर एक देवोपुनीत दुर्लभ हार प्रदान करते हुए कहा—'हे महाराज! आप अमुक दिन अमुक समय में महारानी के साथ सहवास करना तथा उस समय यह हार महारानी को प्रदान करना, उसी समय मैं स्वर्ग में से च्युत होकर महारानी के गर्भ में आऊँगा।'

देवराज की बात सुनकर श्रीकृष्ण हर्षित हुए परन्तु उन्हें चिन्ता हुई कि प्रद्युम्न का छोटा भाई किसके गर्भ में लाऊँ। उन्हें

विचार आया कि प्रद्युम्न और सत्यभामा को भारी द्वेष रहता है, इसलिए यदि प्रद्युम्न का छोटा भाई सत्यभामा के गर्भ में आये तो प्रद्युम्न और सत्यभामा के बीच द्वेषभाव मिटकर एक-दूसरे के लिये प्रेम होगा। ऐसा विचार कर उन्होंने स्वर्ग के जीव को सत्यभामा के गर्भ में लाने का निर्णय किया, परन्तु प्रद्युम्नकुमार के भय से यह गुप्त विचार उन्होंने किसी को भी नहीं कहा।

विद्याओं द्वारा भाई के उत्पन्न होने तथा हार आदि की समस्त वार्ता प्रद्युम्नकुमार को ज्ञात हो गयी। वह प्रसन्न होकर एकदम एकान्त में अपनी माता के महल में गया और विनयपूर्वक निवेदन किया कि—'हे माता! मेरा छोटा भाई कैटभ जो सात भव से मेरे साथ भ्रमण कर रहा है, वह अभी सोलहवें स्वर्ग में देवों का इन्द्र है और थोड़े ही दिनों में मेरे पिता श्रीकृष्ण महाराज के पुत्ररूप से जन्म लेनेवाला है। यद्यपि मेरे पिता वह पुत्र, सत्यभामा महारानी को देना चाहते हैं, तथापि यदि ऐसा सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त करने की तुझे इच्छा हो तो उस पुत्र का मैं तेरे गर्भ में अवतरण करा सकता हूँ।'

पुत्र की बात सुनकर रुक्मणी ने कहा—'बेटा! मुझे तो तू एक ही बस है, क्योंकि तेरे जैसा तू ही है। सूर्य समान कौन हो सकता है? और वैसे भी यह तेरे अधिकार की बात नहीं है।' माता के वचन सुनकर कुमार ने कहा—हे माता! यह मेरे अधिकार की बात है। जिस समय महाराज सत्यभामा महारानी को बुलायेंगे, उसी समय मैं तुझे कृत्रिम सत्यभामा बनाकर उनके निकट भेज दूँगा।'

रुक्मणी ने कहा—'बेटा! संसार में मुझे एक तू ही पुत्र बस

है। यदि तू मेरा पुत्र है तो मैं तुझे कहती हूँ वैसा कर। जाम्बुवती मेरी सौत है, तथापि मुझे प्रिय है। तेरे पिता को उसके साथ बहुत विरोध है। तेरे पिता उसे नहीं चाहते। यदि तू इस देव के जीव का अवतरण उस जाम्बुवती के गर्भ में करा दे तो तेरे पिता और उसका विरोध मिट जायेगा। उत्तम पुरुषों की विभूति पराये के ऊपर उपकार करने में समर्थ होती है, इसलिए जैसे बने वैसे उसके दुःख का निवारण कर।' 'माता के वचन मानूँगा और निश्चय से तद्नुसार ही कार्य करूँगा'—ऐसा कहकर और माता को नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार, रानी जाम्बुवती के महल में पहुँच गया।

रानी जाम्बुवती के महल में जाकर प्रद्युम्नकुमार ने, अपनी माता को जो बात कही थी, वह सब बात कह थी तथा अपनी विद्या द्वारा रूप बदलने की बात भी बतला दी। यह सुनकर जाम्बुवती को बहुत सन्तोष हुआ। उसने कहा—'बेटा! तू उत्तम है, बुद्धिमान है; तुझे जैसा रुचे वैसा कर।' इस प्रकार स्वीकारोक्तियुक्त उत्तर सुनकर प्रसन्न होकर कुमार अपने महल में चला गया। इस ओर जाम्बुवती उस सुख समय की राह देखते हुए समय व्यतीत करने लगी।

❖ ❖ ❖

देवराज द्वारा कथित दिन आया। श्रीकृष्णजी अपनी पूर्व इच्छानुसार सत्यभामा को आने का निवेदन करके वन क्रीड़ा को गये। इस ओर प्रद्युम्नकुमार ने भी जाम्बूवती के घर जाकर उसका रूप बदलनेवाली देवोपुनीत मुद्रिका प्रदान की, जिसके प्रभाव से जाम्बुवती ने अपना रूप बदलकर सत्यभामा का आश्चर्यकारी रूप बना लिया।

कुमार ने कहा—'हे माता! जिस समय तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जाये, उसी समय तुम्हारा प्रकृतरूप धारण कर लेना।' ऐसा कहकर कुमार ने उसे पालखी में बैठाकर और थोड़े सेवकों के साथ वन में भेज दिया, जहाँ श्रीकृष्ण महाराज विराजमान थे। श्रीकृष्ण महाराज उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे ही सत्यभामा समझकर वह देवोपुनीत हार जाम्बुवती को प्रदान किया और जाम्बुवती को प्रसन्न करके उसके साथ रतिक्रिया की। अपना कार्य सिद्ध हो जाने पर तुरन्त ही जाम्बुवती ने अपना असली रूप धारण कर लिया। उसी समय देव का जीव स्वर्ग में से चयकर जाम्बुवती के गर्भ में आ गया। श्रीकृष्ण जाम्बुवती को देखकर आश्चर्यचकित हुए और समझ गये कि यह सब प्रद्युम्नकुमार ने ही किया है। इसलिए प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा आ जाये उससे पूर्व ही उसे विदा कर दिया।

इधर जाम्बुवती गयी और सत्यभामा आयी। श्रीकृष्ण तो सत्यभामा का इन्तजार करते हुए ही बैठे थे। श्रीकृष्णजी ने थोड़ी देर सत्यभामा के साथ प्रेमालाप किया और फिर सत्यभामा को कोई दूसरा सुन्दर हार प्रदान किया, जिसे देवोपुनीत हार जानकर सत्यभामा ने पहन लिया। रतिक्रीड़ा के अन्त में स्वर्ग में से कोई देव चयकर उसके गर्भ में आया।

सत्यभामा और जाम्बुवती का गर्भ बढ़ने पर जो कुछ इच्छा होती, उसे भानुकुमार और प्रद्युम्नकुमार पूर्ण करते थे। गर्भवास के दिन पूर्ण होने पर दोनों को सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। जाम्बुवती के पुत्र का नाम शम्बूकुमार तथा सत्यभामा के पुत्र का नाम सुभानु रखा गया। उनके साथ ही श्रीकृष्ण महाराज के सारथी को

सुदारक नामक पुत्र हुआ, महामन्त्री को बुद्धिसेन नामक पुत्र का जन्म हुआ तथा सेनापति को जयसेन नामक पुत्र हुआ। ये सब बालक एक साथ खेलते-कूदते बड़े हुए और समस्त विद्याओं में पारंगत हो गये।

❖ ❖ ❖

एक दिन की बात है, राज्यसभा भरी हुई थी और उसमें बलदेवजी पाण्डवों के साथ द्युत (जुआ) खेल रहे थे। उस समय दोनों कामकुमार सभा में आये और बड़ों को प्रणाम करके शम्बूकुमार तो प्रद्युम्न के निकट जाकर बैठा और सुभानुकुमार, वह भानुकुमार के नजदीक जाकर बैठ गया। बलदेवजी के आग्रह से तथा दोनों बड़े भाईयों की अनुमति से शम्बूकुमार और सुभानुकुमार भी द्युत खेलने बैठ गये। पहले उन्होंने एक करोड़ मोहरों की बाजी लगायी, उसमें शम्बूकुमार विजित रहा और सुभानु पराजित हो गया। वह एक करोड़ मोहर शम्बूकुमार ने गरीबों को प्रदान की। ऐसे करते-करते धीरे-धीरे सुभानु अपनी माता सत्यभामा के पास जितनी मोहरें थी, वे सब हार गया और शम्बूकुमार ने वे सब जीती हुई मोहरें गरीब लोगों में बाँट दी और स्वयं प्रजा का प्रिय बन गया, अत्यन्त ख्याति प्राप्त की।

शम्बूकुमार के कार्यों से बलदेवजी और पाण्डवों ने आग्रह किया कि कुमार को अब कोई बड़ा कार्य सौंपना चाहिए। श्रीकृष्णजी ने थोड़ी देर विचार कर एक महीने के लिये शम्बूकुमार को राज्य प्रदान किया। दूसरे दिन शम्बूकुमार सम्पूर्ण राजाओं सहित राज्यसभा में आया और आनन्द से सिंहासन पर विराजमान हुआ। बलभद्र, पाण्डव, भानु, सुभानु आदि सबने उसे नमस्कार

किया। इस प्रकार वह तीन खण्ड पृथ्वी का स्वामी होकर राज्य करने लगा।

शम्बूकुमार अपने साथ जन्मे हुए मित्रों के साथ दूसरों को अतिशय दुर्लभ ऐसे इन्द्रियजन्य सुख भोगते हुए एक पापकार्य में प्रवृत्त हो गया। अपने मित्रों के साथ कुलीन स्त्रियों के घर में जाता और बलात्कार से उनका शील भंग करता। लोगों को भेजकर स्त्रियों का अच्छा-बुरा रूप निर्णय कराकर फिर रात्रि में जाकर स्त्रियों का शील भंग करता। इस प्रकार के दुराचरण से नगर में रहनेवाले सब लोग अतिशय दु:खी हो गये। स्त्रियों का शील भंग हुआ, उससे बड़ा दु:ख क्या होगा? अन्त में सब लोग राजमहल में गये और श्रीकृष्णजी से कहा—'हे नाथ! शम्बूकुमार कुलीन स्त्रियों का शील भंग करने लगा है, इसलिए हम द्वारिका छोड़कर अन्यत्र जाकर रहेंगे। और जब आपका राज्य होगा, तब वापस आ जायेंगे। श्रीकृष्णजी ने कहा - हे महाजनों! थोड़े दिन अभी रुक जाओ। जब तक मैं मेरे वचन से दिया हुआ राज्य वापस न प्राप्त कर लूँ, तब तक तुम बहुत बन्दोवस्त से रहो। जब से मैं राज्यसभा में जाने लगूँगा, तब से तुम्हारा कल्याण होगा। आश्वासन के वचन सुनकर लोग अपने घर में अत्यन्त सुरक्षा के साथ रहने लगे।

❖ ❖ ❖

देखो, परिणामों की विचित्रता! जो जीव इसी भव में मोक्ष जानेवाला है, तथा सागरोपम काल तक स्वर्ग में भोग भोगकर आया है, वही जीव, विषय लम्पटी बनकर परायी स्त्री का शील भंग करता है! वही शम्बूकुमार थोड़े ही समय में आत्मस्वरूप की लीनता से आठ कर्मों का नाश करके

मुक्तिसुन्दरी के साथ रमण करेगा।

इस प्रसंग से ख्याल आता है कि एक-एक समय के परिणाम कितने निश्चित हैं! सम्यग्दृष्टि जीव होने पर भी जुआ और परस्त्री सेवन जैसे हीन पाप कर बैठता है। सत्य है कि मिथ्यात्व-संसार-कषायभाव जो एक समय की पर्याय है और एक समय का ही जिसका अस्तित्व है, वह जहाँ त्रिकाली ध्रुव का आश्रय करके उसमें लीन हुआ, वहाँ उसका अस्तित्व रहता ही नहीं।

एक समय की पर्याय में पर्याय की अपनी योग्यता से विकार उत्पन्न हुआ था; वह विकार, त्रिकाल द्रव्य का लक्ष्य करते ही नष्ट होकर शुद्धभाव प्रगट हुआ।

इसलिए यदि अपने से कोई भूल हो जाये तो उस भूल को शाश्वत् मानकर हीनता नहीं अनुभव करते हुए, स्वच्छन्दी न होते हुए, उस भूल को भूलकर त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेना तथा दूसरा जीव भी जो पाप / भूल कर बैठे तो उसे भी पापी न समझकर एक समय का भूला हुआ भगवान जानकर करुणा करना।

❖ ❖ ❖

जब एक महीना पूर्ण हो गया, तब श्रीकृष्णजी सभा में आये और अपना राज्य प्राप्त करके शम्बूकुमार से कहा—'हे पापी! तुझे मेरे राज्य में एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए। तू ऐसी जगह चला जा, जहाँ से तेरा नाम भी सुनने को नहीं मिले।' उसी समय शम्बूकुमार नमस्कार करके सभा छोड़कर चला गया।

प्रद्युम्नकुमार ने पिता से पूछा—'हे तात! शम्बूकुमार अब कभी वापस आ सकेगा या नहीं?'

पिता ने कहा—'हाँ, आ सकेगा; यदि सत्यभामा हाथी पर बैठकर उसके सामने जाकर प्रसन्नता से उसे लायेगी तो मेरे सामने आ सकेगा; नहीं तो नहीं।'

शम्बूकुमार राज्यसभा से निकलकर अपनी माता के महल में गया। वहाँ जाकर माता को नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार के आदेशानुसार सत्यभामा के वन में गया। वहाँ जाकर उसने एक युवती स्त्री का रूप बनाया। सर्वांग सुन्दर और नवयौवन स्त्री का रूप बनाकर शम्बूकुमार उस निर्जन वन में बैठा था, तभी सत्यभामा वहाँ पहुँची। सत्यभामा ने उसके निकट जाकर पूछा—'हे बेटी! मुझे बतला कि तू ऐसे निर्जन वन में कैसे बैठी है? तू तो देवकुमारी जैसी सुन्दर कन्या है।'

कन्या ने सत्यभामा से कहा—'हे माता! मैं एक राजकन्या हूँ। मैं अपने मामा के घर रहती थी। वहाँ मुझे तरुण हुई जानकर माता-पिता मेरा विवाह करने के लिये लेने आये थे, वे बहुत बड़ी सेना के साथ एक पालकी में मुझे बैठाकर रात्रि के समय यही रुके थे। रात्रि में सब सो गये थे परन्तु मुझे मामा की याद आ रही थी, इसलिए नींद नहीं आने से मैं पालकी में उतरकर धरती पर सो गयी। अर्द्ध रात्रि में जब पिता ने आराम कर लिया, तब वे पालकी लेकर रवाना हो गये। परन्तु मैं पालकी के बदले नीचे सो रही हूँ, ऐसा नहीं जाना। अब इस निर्जन वन में मैं अकेली रह गयी हूँ। मैं यह भी नहीं जानती की वे किस मार्ग से गये हैं? इसलिए हे माता! लाचार होकर मैं यहाँ पड़ी हूँ। अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ है।'

उस अनुधा अर्थात् कुँवारी कन्या को रूपवती और गुणवती

जानकर सत्यभामा उसके निकट बैठ गयी और बोली—'हे पुत्री! यदि तू मेरे पुत्र सुभानुकुमार के साथ विवाह करे तो मैं तुझे अपने महल में ले जाऊँगी और तेरी बहुत सेवा कराऊँगी।' उसके उत्तर में कन्या ने लज्जित होकर कहा कि—'यह तो निश्चित है कि मेरे पिता भी मुझे कहीं तो देंगे ही, तो फिर आप तो श्रीकृष्ण की पटरानी होने से आपके पुत्र के साथ मेरा विवाह होने में क्या दोष हो सकता है?' कन्या के वचन सुनकर सत्यभामा उसे अपने महल में ले गयी और उसकी बहुत सेवा कराने लगी।

कुछ समय बाद युक्तिपूर्वक मन्त्रियों को कन्या की याचना कराने के बहाने बाहर भेजा। इसलिए लोगों ने जाना कि सुभानुकुमार के लिये मन्त्री, कन्या की याचना करने गये थे, वे सफलतापूर्वक वापस आये हैं। फिर गुप्त रीति से सत्यभामा ने उस कन्या को नगर के बाहर पहुँचा दिया और स्वयं हाथी पर बैठकर उसे लेने के लिये नगर के बाहर निकली। उस कन्या को अपनी गोद में बैठाकर बड़े उत्सव के साथ चौक में होकर अपने महल में आयी। विवाह का समय हो गया था और सुभानुकुमार तैयार था। दासियों ने कन्या की जो-जो मांगलिक क्रिया हो, वह की। तब तक तो कन्या जैसी थी, वैसी ही रही। जहाँ पाणिग्रहण का समय आया कि कन्या ने विकराल बाघ का रूप धारण कर सुभानुकुमार को पंजे से ऐसा मारा कि वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। ऐसा कौतुक रचकर व्याघ्र वेषधारी शम्बूकुमार हँसते-हँसते श्रीकृष्ण की सभा में पहुँचा, उसे देखकर श्रीकृष्ण को आश्चर्य हुआ। पश्चात् यह सब प्रद्युम्न की लीला जानकर शम्बूकुमार को आश्वासन देकर बैठाया। इस चरित्र से शम्बूकुमार

की माता अति आनन्दित हुई और सत्यभामा दु:खी हुई। सत्यभामा ने एक दूत को अपने पिता के यहाँ सुभानुकुमार के लिये कन्या की याचना के लिये भेजा, जिससे पिता ने सौ सुन्दर कन्यायें भेजीं। सौ कन्यायें प्राप्त कर सुभानुकुमार आनन्दित होकर उनके साथ आनन्द क्रीड़ा करने लगा।

प्रद्युम्नकुमार ने भी शम्बूकुमार के लिये अपने मामा की कन्याओं की याचना की। जो अति सुन्दर थी, परन्तु मामा ने कन्यायें देने से इनकार कर दिया; फलस्वरूप प्रद्युम्नकुमार ने अपनी विद्या के बल से मामा की सभी कन्याओं का हरण कर लिया। मन्त्रियों के समझाने से रुप्यकुमार ने युद्ध नहीं किया। द्वारिका में वापिस आकर प्रद्युम्नकुमार ने उन दो सौ कन्याओं का विवाह शम्बूकुमार के साथ महान उत्सवपूर्वक सम्पन्न किया।

थोड़े समय पश्चात् प्रद्युम्नकुमार को उनकी रति नामक स्त्री से अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ और शम्बुकुमार को भी सौ पुत्र हुए। वे सब साथ में क्रीड़ा करते हुए युवा हुए और सर्व विद्याओं के पारगामी भी हो गये।

❖ ❖ ❖

हे भव्यजनों! तुम्हें इन सब सुखों को पुण्य का फल समझकर पापकार्य छोड़ देना चाहिए और पुण्य का संग्रह करना चाहिए। तीन लोक में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो पुण्य से प्राप्त न हो सकता हो तथा पाप से कोई ऐसा दु:ख नहीं जो भोगना न पड़ता हो! ऐसे लोग पाप करने से अपना पेट भरने के लिये ही रात-दिन चिन्तित रहते हैं, वस्त्र और भोजन बिना धरती पर पड़े रहते हैं, शरीर छिल जाता है, दूसरों के घर नौकरी करनी पड़ती

है, रूप-लावण्यरहित होते हैं, दीन होते हैं, शीत-उष्ण सहन करते हैं और जगह-जगह तिरस्कार पाते हैं। धर्म से सुख, निर्मलता, सज्जनता और सौम्यता प्राप्त होती है, ऐसा जानकर भव्यजीवों को निरन्तर जिनधर्म का सेवन करना चाहिए।

❖ ❖ ❖

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण नारायण ने विद्याधर और मनुष्य जिसकी सेवा करते थे, ऐसे जरासंध को युद्ध में मार दिया और सुदर्शन चक्र प्राप्त कर निष्कटंक राज्य करने लगे। कौरव-पाण्डवों का युद्ध भी हो गया, जिसमें कौरवों का क्षय हो गया।*

❖ ❖ ❖

एक दिन श्रीकृष्णजी, बलदेव और प्रद्युम्नकुमार के साथ सभा में विराजमान थे। इतने में कुमार नेमिनाथ अपने मित्रों के साथ सभा में आ पहुँचे। भगवान की भक्ति करनेवाले सब खड़े हो गये। श्रीकृष्णजी ने उन्हें अपने एकदम निकट उत्कृष्ट सिंहासन प्रदान किया। जब सब बैठ गये तब शूरवीरों के बल की चर्चा होने लगी।

किसी ने कहा—महाराज वसुदेव बलवान है, किसी ने कहा कि बलदेवजी बलवान हैं, किसी ने प्रद्युम्न और किसी ने भानुकुमार तो किसी ने पाण्डवों का नाम लिया, किसी ने कहा कि महाराज श्रीकृष्ण के समान बलवान न कोई है और न कोई होगा। सबकी बात सुनकर बलदेवजी बोले—'अरे! तुम दूसरे शूरवीरों की क्या बात करते हो? जहाँ श्री नेमिकुमार स्वयं विराजमान हैं, वहाँ

---

* कौरव-पाण्डवों के युद्ध का एवं उक्त घटनाचक्र का विस्तृत वर्णन पाण्डवपुराण अर्थात् जैन महाभारत में उपलब्ध है। विशेष जिज्ञासावान जीवों को पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर अपनी जिज्ञासा शान्त करनी चाहिए।

दूसरों की बात योग्य नहीं है। मेरुपर्वत और सरसों के दाने में जितना अन्तर होता है, उतना ही श्री नेमिकुमार और दूसरे शूरवीरों में है। जब संसार में उनके समान दूसरा शूरवीर है ही नहीं तो फिर मैं, श्रीकृष्ण या दूसरे सुभटों की क्या गिनती!' जब बलदेवजी इस प्रकार प्रशंसा कर रहे थे, तब श्री नेमिकुमार निर्मानता से नीचे देख रहे थे।

उस समय श्रीकृष्णजी ने हँसते-हँसते श्री नेमिकुमार से कहा कि—'भाई! चलो, अपन यहीं मल्लयुद्ध करते हैं।' ऐसा कहकर श्री कृष्णजी तैयार हो गये। श्री नेमिकुमार ने कहा—'यह कार्य सज्जनों को योग्य नहीं है। हाँ, यह मेरा पैर सिंहासन पर रखा हुआ है, उसे तुम यहाँ से हटा दो।' नेमिकुमार के यह वचन सुनकर श्रीकृष्णजी कमर कसकर एकदम खड़े हुए और वेगपूर्वक सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उन वीर शिरोमणि का पैर हटाने लगे, परन्तु पैर जरा भी नहीं हटा, तब बलवान श्रीकृष्णजी ने पुनः बहुत शक्ति लगाकर मेहनत की परन्तु उस समय भी रंचमात्र भी पैर नहीं हटा, तब श्रीकृष्णजी बहुत व्याकुल हो गये।

भाई को व्याकुल हुए देखकर श्री नेमिकुमार ने कहा—'हे जनार्दन! पैर को जाने दो, यह मेरे बायें हाथ की बीच की अंगुली को सीधा करो।' तब फिर से श्रीकृष्ण अपनी सारी शक्ति लगाकर, दोनों हाथ से उस अंगुली पर लटक गये परन्तु कुछ भी फल नहीं मिला। नेमिकुमार ने विनोद से हाथ ऊँचा करके उन्हें हवा में लटका दिया। श्रीकृष्णजी को उस समय क्रोध तो बहुत आया था परन्तु क्रोध को छुपाकर उन्होंने अपने भाई की शक्ति की महिमा की। तत्पश्चात् सब अपने-अपने महल में चले गये।

अपने महल में आने के बाद भी श्रीकृष्ण के मन को चैन नहीं आया। उन्हें भय लगने लगा कि श्री नेमिकुमार बहुत बलवान हैं, इसलिए वे अपना राज्य छीन लेंगे। इस कारण उन्होंने अपनी चिन्ता अपने बड़े भाई बलदेव से कही। बलदेव ने कहा—'अरे भाई! तू व्यर्थ चिन्ता करता है। श्री नेमिकुमार तो वैरागी हैं। यदि उन्हें राज्य चाहिए होता तो कभी का ले लिया होता, इसलिए निश्चिन्त हो।' इतना कहने पर भी जब श्रीकृष्णजी को चिन्तित देखा, तब एक निमित्तज्ञानी को बुलाकर एकान्त में श्री नेमिकुमार का सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछा। निमित्तज्ञानी ने कहा—'हे नारायण! आप व्यर्थ चिन्ता मत करो। श्री नेमिकुमार राज्य नहीं करेंगे; वे शीघ्र दीक्षा ले लेंगे। जीवों का विनाश देखकर राज्य-त्याग देंगे और गिरनार पर्वत पर जाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है।

❖ ❖ ❖

कालक्रम के अविरल प्रवाह में बसन्तऋतु का आगमन हुआ। यह सुहावना मौसम आते ही श्रीकृष्णजी वनक्रीड़ा के लिये वन में जाने हेतु उत्सुक हुए। पहले वे अपनी रानियों के पास गये और श्री नेमिकुमार के विषय में कुछ समझाकर फिर वन में जाने के लिये निकल पड़े। उनके जाने के बाद सत्यभामा, रुक्मणी, जाम्बुवती आदि रानियाँ श्री नेमिकुमार के समीप गयीं और कहा—'हे जिनराज! उठो, इस बसन्त के समय में आपके भाई तो कभी के वनक्रीड़ा करने के लिये निकल गये हैं, आपको भी चलना चाहिए।'

वैरागी श्री नेमिकुमार ने कहा—'वहाँ मेरा जाना उचित नहीं

है, आप जायें।' परन्तु भाभियों ने उनकी बात नहीं मानी और बलजोरी से उन्हें वनक्रीड़ा हेतु ले गयीं।

श्रीकृष्णजी उस वन में पहले से ही पहुँच गये थे। श्री नेमिकुमार के आने का समय जानकर अपनी गोपियों को भी जिनकुमार के विषय में कुछ समझाकर स्वयं दूसरे वन में चले गये। उनके चले जाने के बाद गोपियों ने जिनकुमार के साथ बहुत समय तक मनोहर क्रीड़ा की और उनकी भाभियों ने भी पति के कहने से जिनकुमार के साथ जलक्रीड़ा की, परन्तु वैरागी जिनकुमार को उसमें कहीं रुचि नहीं थी। वे वापिका से बाहर आये और अपनी भींगी हुई धोती उतारकर जाम्बुवती से कहा— 'हे देवी! मेरी इस धोती को निचोड़ दो।' यह सुनकर जाम्बुवती बहुत ही नाराज हुई, उसने कहा—'आपको मुझे ऐसी आज्ञा नहीं करना चाहिए क्योंकि मैं श्रीकृष्ण महाराज की रानी हूँ, जो तीन खण्ड के स्वामी हैं, जिन्होंने सुदर्शन नामक चक्र हाथ से चलाया है, जिन्होंने सारंग नामक धनुष को खींचकर गोलाकार किया है तथा नागशैय्या पर आरुढ़ होकर पांचजन्य नामक शंख बजाया है। यदि आपको ऐसा आदेश करने की इच्छा रहती हो तो किसी उत्तम कन्या की याचना करके विवाह क्यों नहीं कर लेते?'

जाम्बुवती के ऐसे उद्धताई वचन सुनकर श्री नेमिकुमार बहुत नाराज हुए। रुक्मणी ने उन्हें रोककर कहा—'अरी दुष्टनी! ऐसा मत बोल। तीन लोक में इनके समान कोई बलवान नहीं है।' ऐसा कहकर रुक्मणी ने वह धोती स्वयं निचोड़ दी, तथापि नेमिकुमार तुरन्त ही आयुधशाला में पहुँचे, चक्र और धनुष लेकर नागशैय्या पर चढ़ गये। तत्पश्चात् उन्होंने चक्र चलाकर,

धनुष को खींचकर गोलाकार करके, तथा सर्पों का मर्दन करके अपने नाक से शंख बजाया। शंख की प्रचण्ड आवाज सुनकर श्रीकृष्णजी दौड़ते हुए आये और श्री नेमिकुमार को उक्त अवस्था में देखकर कहा—हे जिनेश्वर! आपने स्त्री के वाक्य से प्रेरित होकर यह क्या करना चालू कर दिया है ?' पश्चात् वहाँ से उन्हें खड़े करके अपने महल में ले जाकर भले प्रकार भोजनादि से सन्तुष्ट किया।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णजी विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिए? बहुत समय विचार करके श्रीकृष्णजी, माता शिवादेवी के महल में गये। उन्हें प्रणाम करके विनयपूर्वक बोले—'हे माता! श्री नेमिकुमार युवा हो गये हैं, विवाह के योग्य हो गये हैं, तथापि आप उनका विवाह क्यों नहीं करते? इसका क्या कारण है?'

माता शिवादेवी ने कहा—'हे जनार्दन! हमारे वंश में तो तू ही प्रधान है, अतः इस विषय में मुझसे क्या पूछता है? यह सब कर्तव्य तो तेरा ही है।' यह सुनकर माता को प्रणाम करके नारायण अपने महल में वापिस आ गये। इस विषय में पहले बलदेवजी से विचारणा करने के बाद महाराज उग्रसेन के यहाँ जाकर उनकी पुत्री राजुल की याचना की। तत्पश्चात् वे अपने नगर में वापिस आये और श्री नेमिकुमार के विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ करा दीं। उस समय उन्होंने समस्त यदुवंशी और भोजवंशी राजाओं को बुलाया, जो अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित द्वारिकानगरी आ पहुँचे।

❖ ❖ ❖

राजा उग्रसेन ने भी जूनागढ़ में अपनी पुत्री राजुल के विवाह की पूर्ण तैयारी कर दी। उग्रसेन राजा ने वर को लाने के लिये उत्तम-उत्तम सवारियाँ लेकर अपने बहुत से सेवकों को उत्तम आभूषणों से सजाकर भेजा। सेवक द्वारिका आ पहुँचे, जहाँ उनका बहुत स्वागत किया गया। शिवादेवी, देवकी, रोहिणी, सत्यभामा, रुक्मणी आदि सभी रानियों ने द्वारिका में ही समस्त मंगल विधान किये अर्थात् वे बारात के साथ नहीं गयीं। जिस समय कुमार की मंगल आरती उतारी जा रही थी, उस समय शिवादेवी की ओढ़नी दीपक की ज्योति से झुलस गयी, वह मानो कि सबको कहती हो कि यह उत्सव मत करो अर्थात् बारात मत ले जाओ। तत्पश्चात् बारात जूनागढ़ की ओर गमन करने लगी। वर के साथ समुद्रविजय, वसुदेव, बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, भानु, सुभानु आदि अनेक राजा चलने लगे। मार्ग में एक ओर अनेक पशु बँधे हुए थे, वे अतिशय दीनतायुक्त करुण पुकार कर रहे थे। नेमिकुमार ने उनकी करुण पुकार सुनी। जीवों की पुकार सुनकर दयामूर्ति नेमिकुमार ने सारथी से पूछा—'हे सारथी! यह जीवों को समूह क्यों बाँध रखा है?' सारथी ने कहा—'हे नाथ! यादववंशी तथा अन्य राजा-महाराजा तो अभक्ष्य का सेवन नहीं करते परन्तु कितने ही भील आदि नीच कुल के विवाह में आये हैं, उनके लिये रक्षकों द्वारा ये सभी प्राणी बाँधे गये हैं।'

सारथी के वाक्य सुनते ही नेमिकुमार ने तुरन्त सभी प्राणियों को बँधनमुक्त कर दिया। वे मन में वैराग्य का चिन्तवन करने लगे। वे विचार करने लगे कि—**यह गृहबन्धन -गृहस्थमार्ग पाप का कारण है। इन जीवों का घात करनेवाले दुष्ट लोग इस**

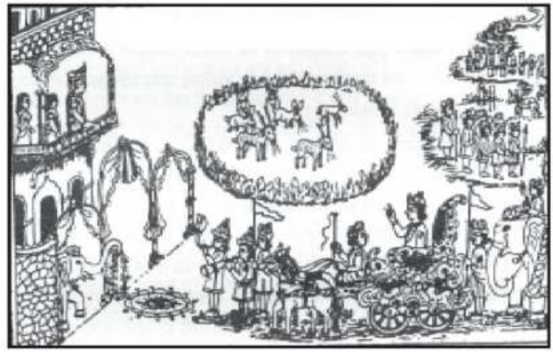

हिंसाकर्म से नरक में पड़ेंगे, जहाँ बहुत ही भारी वेदना होती है। इन बेचारे निरपराधी जीवों को, जो कि जंगलों में रहते हैं और घास खाकर जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें ये लोग क्यों मारते हैं? जो शूरवीर अपने को पैर में काँटा न लग जाये, इस भय से जूते पहनते हैं, वे ही पापी दयारहित होकर इन जीवों को किस प्रकार मारते हैं? इस उत्सव से जान लिया कि विवाह का फल संसार बढ़ानेवाला है। पापों का आरम्भ करनेवाले इस असार संसार को धिक्कार है।

इस प्रकार वे वैराग्यरूप चिन्तवन कर रहे थे, उसी समय लोकान्तिकदेव आये और प्रभु की वैराग्य भावना की अनुमोदना करके उसमें वृद्धि की। लोकान्तिकदेवों सहित प्रभु द्वारिका पहुँच गये।

श्रीकृष्णजी ने भगवान को बहुत मनाया और कहा कि आप विवाह कर लें। माता-पिता ने भी बहुत समझाया परन्तु कुछ फल नहीं आया। भगवान उन सबको सम्बोधन करके सिंहासन पर विराजमान हो गये। भगवान के वैराग्य से सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। इन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान के वैराग्य का प्रसंग जानकर तुरन्त ही भगवान के पास पहुँच गये। उन्होंने महा उत्सव के साथ भगवान का अभिषेक किया, सुगन्धित

मलियागिर चन्दन का विलेपन किया, कल्पवृक्षों के फूलों से पूजा की और स्तुति करने के बाद, सोलह प्रकार के आभरणों से शोभायमान श्री जिनभगवान स्वयं चलकर पालकी में विराजमान हुए। उस पालकी को लेकर प्रथम सात कदम राजा चले और तत्पश्चात् देव आकाशमार्ग से ले गये। द्वारिका के लोग, भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओं भी पालकी के पीछे रैवतकपर्वत अर्थात् गिरनारपर्वत की ओर चले। इस ओर जब राजुल को यह समाचार ज्ञात हुए तो वह भी कदम-कदम पर आक्रन्दन करती हुई - विलाप करती हुई पीछे-पीछे चल दी।

❖ ❖ ❖

गिरनारपर्वत पर पहुँचकर सहस्राम्रवन में जाकर भगवान ने महान कार्य किया अर्थात् मस्तक के समस्त केश पाँच मुष्ठी से लोंच करके उखाड़ दिये और 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर सम्पूर्ण आभरण आदि का परित्याग कर नग्न-दिगम्बर जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। (तीर्थंकर के जीव को कोई दीक्षा गुरु नहीं होते, इसलिए वे स्वयं ही दीक्षा लेते हैं, यह नियम है) उस समय सुर-असुर धन्य... धन्य... करके स्तुति करने लगे। नेमि मुनिश्वर तो अपने ध्यान में लीन हो गये। उनके साथ एक हजार राजाओं ने भी दीक्षा अंगीकार की। भगवान के केश, इन्द्र ने क्षीरसागर में बहा दिये। इस प्रकार तीसरा तपकल्याणक मनाकर इन्द्र स्वर्ग में चला गया।

❖ ❖ ❖

मुनिराज नेमिकुमार ने तीसरे दिन ध्यान छोड़कर, द्वारिका में आकर ब्रह्मदत्त के यहाँ पारणा किया। खीर के भोजन से विधिपूर्वक

पारणा हो जाने पर देवों ने ब्रह्मदत्त के घर में पंचाश्चर्य की वर्षा की। तत्पश्चात् भगवान वापस रैवतकपर्वत पर आये और चार घातियाकर्मों का क्षय करने के लिये ध्यान लगाकर विराजमान हो गये।

❖ ❖ ❖

इस ओर विलाप करती हुई और नेमिकुमार का ध्यान करती हुई राजुल वापस अपने घर की ओर मुड़ी। जब उसने देखा कि भगवान दीक्षित हो गये हैं, तब उसने भी संयम अंगीकार करने का दृढ़ निर्णय कर लिया। घर में आने पर उसके पिता ने समझाया—'बेटी! अब तू दु:खी मत हो। मैं किसी दूसरे राजा के साथ तेरा विवाह करा दूँगा।' तब राजुल ने कहा—'पिताजी! मैं नेमिकुमार को छोड़कर दूसरे समस्त राजाओं को आपके समान गिनती हूँ। नेमिकुमार के अतिरिक्त मेरा कोई पति नहीं हो सकता।' यह सुनकर राजा उग्रसेन दु:खी हो गये। राजुल भी नेमिनाथ का ध्यान करते हुए दिन व्यतीत करने लगी।

❖ ❖ ❖

इस ओर मुनिवर नेमिनाथ ने आत्मा का आत्मा में ध्यान लगाकर क्षपकश्रेणी पर आरुढ़ होकर चार घातिकर्मों का नाश करके लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान प्रगट कर लिया। मुनिराज को ध्यान में लीन होने के बाद छप्पन दिन में केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान होते ही इन्द्र का इन्द्रासन कम्पायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से भगवान को केवलज्ञान हुआ जानकर सात कदम चलकर परोक्ष प्रणाम किया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने भव्य समवसरण की रचना की।

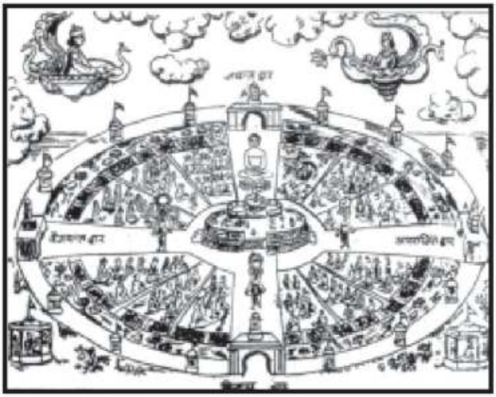

भगवान के केवलज्ञान के समाचार सुनकर द्वारिका से तथा जूनागढ़ से भी भव्य जीव समवसरण में आ पहुँचे। राजुल भी पाँच हजार स्त्रियों के साथ समवसरण में आकर भगवान को नमस्कार करके दीक्षित हो गयी और समस्त आर्यिकाओं में प्रमुख बन गयी। तत्पश्चात् श्री वरदत्त गणधर के प्रश्न पूछने से जिनभगवान की मधुर वाणी खिरी। जिसमें चार अनुयोग, बारह अंग, रत्नत्रय और सात तत्त्वों का स्वरूप तथा उनका सार आया। वाणीरूपी अमृत को पीकर भव्य जीव धन्य बने। तत्पश्चात् भगवान ने बहुत देशों में विहार किया। जहाँ-जहाँ भगवान का समवसरण लगता था, वहाँ-वहाँ भगवान कल्याणकारी उपदेश देते थे। समस्त देशों में विहार करके भगवान वापस रैवतकपर्वत पर पधारे।

भगवान के समवसरणसहित पधारने के समाचार सुनकर श्रीकृष्ण नारायण तथा दूसरे राजा दिव्यध्वनि-तत्त्व का स्वरूप सुनने के लिये पहुँच गये। भगवान के मुख से ६३ शलाका पुरुषों का वर्णन सुनकर सभी जीवों के चित्त पर वैराग्य छा गया। उस समय समवसरण में श्रीकृष्ण के भाई गजसुकुमार भी थे। उन्हें ऐसा वैराग्य हुआ कि तत्काल भगवान के निकट जिनदीक्षा अंगीकार कर ली और श्मशान में आत्मध्यान करने के लिये चले गये।

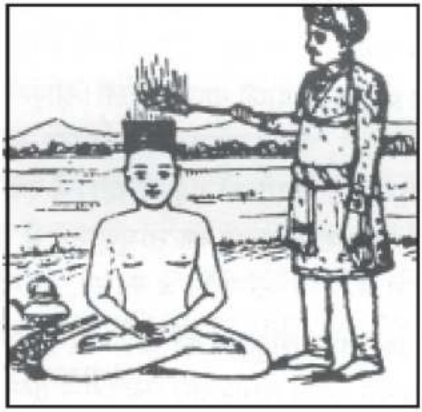

जब गजसुकुमार के ससुर ब्राह्मण सोमशर्मा को ज्ञात हुआ कि गजसुकुमार ने दीक्षा अंगीकार कर ली है, तब वह उनके निकट गया और गज मुनिराज को समझाने लगा कि—'आप दीक्षा का परित्याग कर दें।' उस समय गजसुकुमार तो अपने ध्यान में लीन हो गये थे। सोमशर्मा को उसकी पुत्री के मोह ने अन्ध कर दिया। अपनी बात नहीं मानने से सोमशर्मा को बहुत क्रोध आया; इसलिए उसने मुनिराज के सिर पर मिट्टी की पाल बाँधकर सिगड़ी बनाकर उसमें सुलगते हुए अंगारे / कोयले डाल दिये परन्तु मुनिराज तो अपने ध्यान में मस्त थे। उन्हें शरीर में उपयोग ही नहीं होने से अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

❖ ❖ ❖

गजसुकुमार मुनिश्वर को केवलज्ञान होने पर नेमिनाथ भगवान के समवसरण में से देव जयध्वनि करते हुए चलने लगे। यह देखकर श्रीकृष्णजी ने भगवान से पूछा—'हे भगवन! अचानक ये सब देव कहाँ जा रहे हैं?' तब भगवान की वाणी में आया कि श्री गजसुकुमार मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है, इसलिए सभी देव वहाँ जा रहे हैं। यह उत्तर सुनकर सबको महान आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्ण भी विचार करने लगे कि यह संसार असार है, क्योंकि जितने शलाका पुरुष हैं, उन्हें नष्ट होते सुना है।

तत्पश्चात् बलभद्रजी ने पूछा—'हे नाथ! जो पदार्थ अनादि है, वह तो अकृत्रिम है; इसलिए उसका कभी नाश नहीं होता परन्तु जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनका अवश्य नाश होता है। इसलिए द्वारिका का नाश कब और किस प्रकार होगा? तथा श्रीकृष्ण की मृत्यु किस प्रकार होगी?' उत्तर में नेमिनाथ भगवान ने कहा कि—'यह द्वारिकानगरी बारह वर्ष के पश्चात् द्विपायन मुनि के क्रोध से नष्ट होगी तथा मद्य (शराब), निमित्त होगी। कौशाम्बी वन में सोये हुए श्रीकृष्ण का जरतकुमार के बाण से मृत्यु होगी। यह सुनकर सभी लोग आकुलित हो गये। कितने ही लोग नगर छोड़कर चले गये और कितने ही लोगों ने वैराग्य से जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

अपने निमित्त से द्वारिका का नाश न हो, इसलिए द्विपायन मुनि ऊपरी वैराग्य से विदेश की ओर गमन कर गये परन्तु जो होनेवाला है, वही भगवान ने देखा है और वही भगवान ने कहा है, उसे टालने अथवा बदलने के लिये इन्द्र, नरेन्द्र या स्वयं जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। जरतकुमार भी, अपने हाथ से तीन खण्ड के स्वामी अपने भाई की मृत्यु न हो, इसलिए नगर छोड़कर जंगल में चला गया। सबने उसे बहुत रोका परन्तु उसने किसी की बात नहीं मानी।

❖ ❖ ❖

यहाँ विचारणीय बात यह है कि क्या द्विपायन मुनि को तथा जरतकुमार को सर्वज्ञ की वाणी में श्रद्धा नहीं थी? यदि श्रद्धा थी तो द्वारिका का नाश होने से रोकने के लिये द्विपायन मुनि दूर देशान्तर में क्यों चले गये? और श्रीकृष्ण की मृत्यु का निमित्त न बनने के लिये जरतकुमार ने राज्य का परित्याग क्यों

कर दिया ? और यदि श्रद्धा नहीं थी तो फिर स्वयं जहाँ थे, जैसे थे, वहाँ क्यों नहीं रहे ?

अरे भाई! इन दोनों को भगवान की वाणी में पक्की श्रद्धा थी। उन्हें पूरी-पूरी श्रद्धा थी कि भगवान ने जो कहा है, वह उन्होंने केवलज्ञान में वर्तमानवत् देखा है और वर्तमानवत् परिणमता जो देखा है, वही दिव्यध्वनि में आया है। इतनी श्रद्धा होने पर भी उन दोनों ने अपने मोहवश 'ऐसा न होवे तो अच्छा' ऐसे भाव से यह प्रवृत्ति की थी। दूर देशों में जाकर रहना और राज्य छोड़ना, यह उनके मोहजन्य विकल्प का कार्य था और ऐसा विकल्प इसीलिए आया था कि 'सर्वज्ञ ने देखा है, वैसा ही होगा' ऐसी दृढ़ श्रद्धा थी। नहीं तो—अर्थात् श्रद्धा नहीं होती तो—ऐसा विकल्प ही नहीं करते! जहाँ जैसे थे, वहाँ वैसे ही रहते!

इस प्रसंग से एक दूसरी बात यह बहुत स्पष्ट होती है कि 'भगवान ने देखा है, वैसा ही होगा परन्तु अपने को कहाँ पता है कि क्या देखा है ? इसलिए अपने को तो पुरुषार्थ ही करना है न!' ऐसे सन्देह का इस प्रसंग में हल समाहित है कि भगवान ने क्या देखा है, यह जानने के बाद भी वह कार्य होकर ही रहे, वैसा पुरुषार्थ होने का अर्थात् भगवान ने जो देखा है, वह जानकर यदि वे दोनों वैराग्य से जहाँ थे वहाँ वैसे ही रहे होते तो ? तो न द्वारिका जलती या न श्रीकृष्ण की मृत्यु होती! परन्तु भगवान ने क्या देखा है, यह जानकर भी उन्होंने ऐसा ही प्रयत्न किया जिससे वे कार्य होकर ही रहे। अर्थात् भविष्य की कौन सी पर्याय होनेवाली है, उसका वर्तमान में जानपना हो या न हो परन्तु जीव की क्रमबद्धतानुसार ही जीव का पुरुषार्थ होता है,

भले अज्ञान से जीव ऐसा भ्रम में रहता है कि मैं अपनी इच्छानुसार पुरुषार्थ कर सकता हूँ।

'जीव की जैसी भवितव्यता अर्थात् पर्याय की क्रमबद्धता होती है, वैसी ही उसकी बुद्धि होती है और वह व्यवसाय अर्थात् पुरुषार्थ भी वैसा ही करता है और उसे सहायक अथवा निमित्त भी वैसे ही मिल जाते हैं।'

इसीलिए कहा है कि

जब जिसका जिसमें जिस थल में जिस विधि से होना जो कार्य,
तब उसका उसमें उस थल में उस विधि से होता वह कार्य;
अत: नहीं मैं पर का कर्ता और न पर में मेरा कार्य,
सहज स्वयं निज क्रम से होती है मुझमें मेरी पर्याय।

❖ ❖ ❖

एक दिन श्रीकृष्ण सभा में विराजमान थे, तब प्रद्युम्नकुमार सभा में आये और पिता को नमस्कार करके योग्य आसन ग्रहण करके बैठ गये। उस समय उनका मन विषय -वासनाओं से विरक्त हो गया था। थोड़ी देर बाद चलते हुए विषय का अन्त आने पर कुमार ने कठिनाई से भी न छोड़ा जा सके, ऐसे मोह को छोड़कर, दोनों हाथ जोड़कर कहा—'हे पिताश्री! आपके प्रसाद से मैंने समस्त ही भोग सामग्री प्राप्त की और भोगी है, परन्तु भोगकर जान लिया है कि कोई भी वस्तु शाश्वत् रहनेवाली नहीं है। हे प्रभु! संसार की स्थिति नित्यतारहित अर्थात् क्षणभंगुर है। इसलिए प्रसन्न होओ और आज्ञा प्रदान करो कि जिससे आपकी कृपा से मैं मोक्षसुख की प्राप्ति के लिये, जो कि सदा शाश्वत् है, उसके लिये उपाय करूँ। यह समस्त संसार असार और दु:खदायक

है, इसलिए हे पिता! मैं संसार भ्रमण का नाश करनेवाली जिनदीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ।'

प्रद्युम्नकुमार के वचन सुनकर समस्त यादव दुःखी हो गये। मोह के वश हुए बड़े लोगों ने कहा—'हे बेटा! आज तू इतना कठोर कैसे हो गया है? संयम धारण करने का यह समय नहीं है। तू अभी युवक और रूपवान होने से भोग-भोगनेयोग्य है।' यद्यपि श्रीकृष्ण जानते थे कि भगवान के वचनों में किंचित् भी अन्तर नहीं होता, तथापि उन्होंने मोह के वश होकर कुमार को कहा कि—'हे पुत्र! द्वारिका के सम्बन्ध में भगवान ने जो कहा, वह होगा या नहीं, यह किसने देखा? अतः तू भय न कर।'

अपने बन्धुओं को मोह के वश जानकर कुमार ने कहा—'हे पूज्य पुरुषों! केवली भगवान के वचन कभी भी अन्यथा नहीं हो सकते और मैं किंचित् भी भयभीत नहीं हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी में मुझे किसी का भय नहीं है। **जीवधारियों को अपने प्राचीन बाँधे हुए कर्मों के अतिरिक्त दूसरा कोई डर नहीं है। संसार में न कोई बन्धु है तथा न कोई शत्रु है, न कोई किसी को सुख-दुःख दे सकता है और न कोई किसी से सुख-दुःख ले सकता है। इस असार संसार में जीव अनादि-निधन है। अगणित भवों में जीव के अगणित बन्धु हुए हैं, तो बताओ, किन-किन बन्धुओं से स्नेह रखना?** ऐसा विचार कर आप शोक का परित्याग करें क्योंकि शोक महा दुःखकारी है।'

कुमार के ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण का हृदय भर गया। उन्हें दुःखी देखकर कुमार ने कहा कि—'हे तात! आप क्या शोक करते हो? आप तो सबको उपदेश देनेवाले हो! क्या सूर्य

को दीपक दिखाने की आवश्यकता है? क्या आप नहीं जानते कि मृत्यु आयु के अन्त में सबका भक्षण कर जाती है।

मृत्यु न बालक को छोड़ती है, न कुमार को; न विद्वान को देखती है या न मूर्ख को; न रूपवान को छोड़ती है और न कुरूप को बचाती है, तो फिर क्या मैं जवान हूँ, गुणवान हूँ, भोग भोगने योग्य हूँ, इसलिए मृत्यु मुझे छोड़ देगी?' इस प्रकार वैराग्य प्रेरक वचनों से पिता को समझाकर तथा शम्बुकुमार को अपने पद पर स्थापित करके कुमार अपने महल में आ गये।

माता को नमस्कार करके कुमार ने कहा—'हे माता! बाल्यावस्था से लेकर अभी तक मैंने जो कुछ भूल की हो, वह क्षमा करो। मैं आपका बालक हूँ। मैं अब दिगम्बरी दीक्षा धारण करने जा रहा हूँ, जो सम्पूर्ण कर्मरूपी ईंधन के समूह का नाश करने के लिये दावानल के समान है, शीलादि बड़े-बड़े रत्नों का रत्नाकर है, गुणों का मन्दिर है; जो पूर्व पुरुषों ने वन में जाकर ग्रहण की है। हे माता! इस विषय में तुम्हें मुझे रोकना नहीं चाहिए।'

पुत्र के वचन सुनकर रुक्मणी अत्यन्त दुःखी हुई, उसने पुत्र को दीक्षा ग्रहण नहीं करने के लिये बहुत समझाया। माता को शोकाकुलित देखकर कुमार ने कहा—'**हे माता! तू संसार के स्वरूप को नित्य स्थायी समझ रही है, परन्तु यह नहीं जानती कि जीवधारी अकेला उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है, अकेला ही कर्म बाँधता है और अकेला ही उनका फल भोगता है। इसलिए जो विवेकी हैं, उन्हें कभी भी शोक नहीं करना चाहिए। जीव को चारों गति में दुःख देनेवाला मोह ही है। जब**

तक मोह है, तब तक अधिकाधिक दुःख है। जन्म के साथ मरण रहा हुआ ही है, जो विष समान दुःखदायी है। विवेकी जीव इस मोह को छोड़कर सुकृत करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें जो रोकता है, वह शत्रु है, इसमें कोई सन्देह नहीं! ऐसा समझकर मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करें।'

पुत्र के वचन सुनकर रुक्मणी का मोह दूर हो गया। विषयों का परिणाम समझकर उसने कहा—'हे पुत्र! मैं, पुत्र और पुत्रवधू के मोह से मोहित हो रही थी। तूने मुझे प्रतिबोधित किया है। हे गुणधर! इस विषय में तू मेरे गुरु समान है। **बेटा! जिस प्रकार सूखे पत्रों का समूह हवा लगने से उड़ जाता है, उसी प्रकार कुटुम्बीजनों का संयोग है। जैसे बादलों का समूह आकाश में दिखता है और थोड़ी ही देर में हवा के प्रभाव से नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सम्पत्ति भी बात-बात में ही नष्ट हो जाती है। एक तप और संयम ही संसार में ध्रुव है। विषयों की प्रीति अवश्य नाश होनेवाली है। सुख के साथ दुःख रहा हुआ ही है। विषयभोग विष समान परिपाक समय में दुःख देनेवाले हैं। यदि संसार के विषयों में कुछ भी सार होता तो शलाका पुरुष उन्हें किसलिए तजते? और मोक्ष के लिये किसलिए प्रयत्न करते? इस प्रकार संसार की अनित्यता और असारता जानकर तुझे मोक्ष का शाश्वत् सुख प्राप्त करने के लिये ही प्रयत्न करना चाहिए।** सन्मार्ग के आचरण में रक्त और कृत्रिम-क्षणस्थायी सुखों से विरक्त ऐसे तुझे मैं रोक भी नहीं सकती परन्तु मैं स्वयं ही स्नेह-मोह को तजकर तपोवन में प्रवेश करती हूँ - दीक्षा धारण करती हूँ, जो कि संसाररूपी समुद्र पार करने के लिये

जहाज के समान है। हे पुत्र! इतने समय से मैं जो सुख में लवलीन होकर घर में रहती थी, वह केवल तेरे मोह से ही रहती थी।'

माता के वचन सुनकर कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपनी सभी रानियों को बुलाकर कहा—'हे रानियों! यह जीव दुःख से भरे हुए संसार में चिरकाल तक भ्रमण करके किसी प्रकार दैवयोग से मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। उसमें भी उच्चकुल में जन्म प्राप्त करना तो महाकठिन है। सुकुल में जन्म प्राप्त होने पर भी राज्य और धन-वैभव का प्राप्त होना तो अति कठिन है। संसार में जो कुछ दुर्लभ था, वह तो मैं प्राप्त कर चुका हूँ। अब मेरा जो यथार्थ कर्तव्य है, वह मोक्षसुख प्राप्त करना है, तदर्थ मैं जिनदीक्षा ग्रहण करता हूँ। यह जीव स्त्री के लिये ऐसा कौन सा कार्य है जो कि नहीं करता? निरन्तर विषयों में विह्वल रहकर अन्त में वह मृत्यु के मुख में जा गिरता है। तुम सबके साथ मैंने निरन्तर अनेक प्रकार के भोग-भोगे हैं, तथापि उनसे तृप्ति नहीं हुई। ऐसी अवस्था में कि जब विषयभोगों से तृप्ति ही नहीं होती, अधिक से अधिक अभिलाषा बढ़ती है, मैं घर में किसलिए रहूँ? इसलिए मैं जिनदीक्षा धारण करने के लिये तपोवन में जाना चाहता हूँ। इसलिए तुम्हें क्षमाभाव धारण करना चाहिए।'

अपने पति के ऐसे वैराग्यप्रेरक वचन सुनकर उनकी सभी स्त्रियों ने कहा—'हे नाथ! आप ही हमारे शरण हैं, आप ही हमारे आश्रयदाता हैं, आप ही रक्षक हैं! यदि आप इस गृहवास का त्याग करके दीक्षा अंगीकार करना चाहते हैं तो हम भी आपके साथ वन में आकर आर्यिकाओं का व्रत ग्रहण करेंगे। आप प्रसन्नता से दीक्षा धारण करें।'

इस प्रकार सबसे क्षमायाचना करके प्रद्युम्नकुमार हाथी पर आरूढ़ होकर गिरनारपर्वत पर पहुँचे। वहाँ दूर से ही समवसरण को देखते ही हाथी से नीचे उतरकर राज्य की विभूति का परित्याग कर दिया। पूर्व में प्राप्त किये हुए सोलह लाभों का भी त्याग किया और विद्याओं को छोड़ते समय उनसे क्षमायाचना की। समवसरण में जाकर कुमार ने भगवान श्री नेमिनाथ की साक्षी में जिनदीक्षा अंगीकार की। यह देखकर वैराग्य के रंग में रंगे हुए भानुकुमार ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली। उनके साथ सत्यभामा, रुक्मणी, जाम्बुवती आदि तथा प्रद्युम्नकुमार की रानियों ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण किये।

❖ ❖ ❖

मुनिराज प्रद्युम्न को वैराग्य से विभूषित, तपरूप लक्ष्मी से शोभित और घोर तपश्चर्या करते हुए देखकर श्रीकृष्ण, बलदेव आदि मोह के वश दु:खी होकर द्वारिका आये और अपने राजकाज में लग गये। इस ओर प्रद्युम्न मुनि कठिन तप करने लगे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से संयुक्त, देव-शास्त्र-गुरु की त्रिधा भक्ति करते हुए उन्होंने अनेक लब्धियाँ प्राप्त कीं। काम, क्रोधादि कषायों को उन्होंने सर्वथा नष्ट कर दिया था। वे विषयों से सर्वथा निस्पृह थे। प्रद्युम्न मुनि ने जैसा तप किया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। गिरनार से ग्यारहवें दिन ही क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करके एक आसन में स्थिर होकर ध्यान लगाकर क्षपकश्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्राप्त किया। प्रद्युम्न मुनि को केवलज्ञान होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने गन्धकुटी की रचना की। भवनत्रिक देव भगवान के समीप आ पहुँचे। विद्याधर आदि राजा भी उनके दर्शन करने आ गये।

श्रीकृष्ण भी अपने पुत्र-परिवार सहित भगवान के दर्शन करने आ पहुँचे। उन्होंने भगवान की भक्ति-पूजा करके धर्मोपदेश का लाभ लिया। प्रद्युम्न केवली अनेक देवों तथा राजाओं से घिरे हुए थे। तत्पश्चात् प्रद्युम्न केवली भी नेमिनाथ भगवान के साथ विहार करने लगे। नेमिनाथ भगवान के साथ श्री रुक्मणी आर्यिका तथा उनकी जो पुत्रवधुयें थी, वे सभी आर्यिकायें भी देश-देश में विहार करने लगीं। गिरनार से विहार करके वे पल्लव देश में पहुँचे।

❖ ❖ ❖

इसी समय एक दूसरी घटना इस प्रकार घटित होती है।

द्विपायन मुनि जो कि द्वारिका को बचाने के लिये अन्य देश में गये थे, वे बारह वर्ष पूर्ण हुए समझकर द्वारिका देखने की इच्छा से वापिस आये परन्तु उनकी गिनती में भूल होने से (कदाचित् अधिक माह की गिनती करना भूल गये थे) बारह वर्ष में थोड़ा समय शेष था और वे आ पहुँचे। गर्मी का समय था। द्विपायन मुनि नगर के बाहर एक शिला पर बैठ गये। दैवयोग से शम्बूकुमार, सुभानुकुमार आदि मित्रोंसहित गिरनारपर्वत पर क्रीड़ा करने गये थे। गर्मी के कारण प्यास लगने से उन्होंने गड्ढों में भरा हुआ पानी पिया, जिसमें शराब मिली हुई थी। (द्वारिका के नाश में शराब निमित्त बनना होने से श्रीकृष्ण की आज्ञा से वह सब शराब जंगल में फिंकवा दी गयी थी, वह वर्षाऋतु के पानी के साथ मिलकर एक गड्ढे में गिरकर अधिक सड़ गयी थी।)

उस शराबवाला पानी पीते ही उन्हें नशा हो गया। वे जैसे-तैसे बकवास करते-करते द्वारिका की ओर आ रहे थे, तभी मार्ग

में एक शिला पर द्विपायन मुनि को बैठे हुए देखा। मुनिराज को देखते ही वे पहिचान गये कि इन मुनि के हाथ से ही द्वारिका का नाश होनेवाला है, इसलिए उन्होंने मुनिराज को मार डालने का निर्णय किया, जिससे द्वारिका को नुकसान न हो। इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने गाली बकते हुए पत्थर मारना शुरु किया। तब तक पत्थर मारे कि जब तक मुनिराज गिर नहीं गये। इतना उपसर्ग करने पर भी मुनिराज ने क्रोध नहीं किया। कुमारों को इतने से भी सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने चाण्डालों से मुनिराज पर पेशाब करवाया। मुनिराज यह सहन नहीं कर सके और अत्यन्त क्रोधित हो गये। कुमार तो ऐसी हालत में मुनिराज को छोड़कर आ गये।

श्रीकृष्ण को यह समाचार ज्ञात होते ही वे बलभद्र के साथ शीघ्र उस स्थान पर पहुँचे जहाँ द्विपायन मुनि पड़े हुए थे। दोनों भाईयों ने अत्यन्त भक्ति से मुनिराज को बैठाया और नमस्कार करके कहा—'हे भगवान! हम से जो कुछ भूल हो गयी है, उसे क्षमा करें। आप क्षमा धारण करनेवाले योगीन्द्र हैं। इसलिए हे प्रभु! इन मूर्ख बालकों की क्षुद्र क्रिया को माफ करें।' तब मुनिराज ने दो अंगुलियों के ईशारे से कहा कि—'तुम दोनों भाई (श्रीकृष्ण-बलभद्र) के अतिरिक्त पूरी द्वारिका में से कोई नहीं बचेगा।' उन दो अंगुलियों का ईशारा

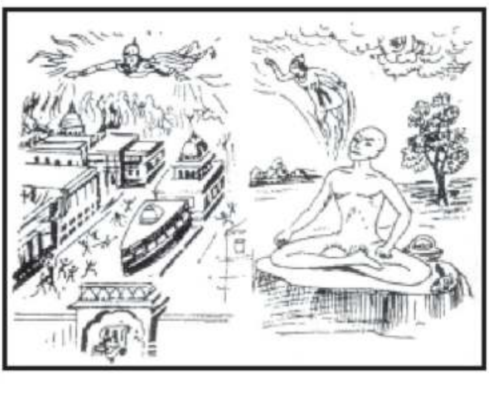

समझकर दोनों भाई तुरन्त ही नगरी में गये और घोषणा करवा दी कि जो लोग नगर छोड़कर अणुव्रत या महाव्रत धारण करना चाहते हैं, वे जा सकते हैं। यहाँ जो रहेंगे, वे निश्चित ही मरेंगे।

इस घोषणा को सुनते ही शम्बूकुमार, सुभानुकुमार, और प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध प्रतिबोधित हो गये। वे शीघ्र ही भगवान नेमिनाथ को परोक्ष नमस्कार करके गिरनार पर्वत पर जाकर दीक्षा अंगीकार करके ध्यान में विराजमान हो गये। तत्पश्चात् द्विपायन मुनि के शरीर में से अशुभ तेजस शरीर निकलकर द्वारिका को भस्म करता है और जंगल में जाने पर श्रीकृष्ण की भी जरतकुमार के हाथ से तीर लगने से मृत्यु होती है। (इस विषय का विशेष विस्तार हरिवंश पुराण में से जानना चाहिए।)

❖ ❖ ❖

देखो, पर्याय की क्रमबद्धता! अनन्त केवलियों ने अनन्त-अनन्त काल पहले द्वारिका का नाश जो निश्चित था, वह देखा था, वही श्री नेमिनाथ भगवान ने बारह वर्ष पहले अपनी वाणी द्वारा कहा और वही आज बारह वर्ष बाद द्वारिका का द्विपायन मुनि के हाथ से नाश हुआ, तथा श्रीकृष्ण की जरतकुमार के हाथ से मृत्यु हुई।

देखो! द्वारिका का नाश न हो, ऐसा विचारकर द्विपायन मुनि देश छोड़कर चले गये। भगवान की वाणी मिथ्या करने!! जरतकुमार भी भगवान की वाणी को मिथ्या करने-पर्याय की क्रमबद्धता को बदलने के लिये देश छोड़कर जंगल में चले गये, तथापि जिस पर्याय की क्रमबद्धता को बदलने-तोड़ने को इन्द्र, नरेन्द्र और जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं, उसे वे किस प्रकार बदल सकते हैं!

देखो, श्रीकृष्ण की पर्याय की तत्समय की योग्यता-पर्याय की क्रमबद्धता! द्वारिका के नाश के समाचार सुनकर संसार की असारता का ख्याल आने पर प्रद्युम्नकुमार ने दीक्षा अंगीकार कर ली और केवलज्ञान प्राप्त किया! जबकि श्रीकृष्ण को दीक्षा के भाव तो नहीं हुए परन्तु व्रत अंगीकार करने के भी भाव नहीं हुए क्योंकि यदि श्रीकृष्ण दीक्षा धारण करें या व्रत अंगीकार करें तो उन्हें ऊर्ध्वगति में जाना पड़े! परन्तु अनन्त काल पहले से ही उनका नरकायु में जाना तो निश्चित था, इसलिए उस पर्याय की क्रमबद्धता को बदलने में श्रीकृष्ण भी समर्थ नहीं थे।

इस प्रसंग से क्रमबद्धता सचोट समझी जा सकती है कि जो जीव अपनी उस समय की यथायोग्य वर्तमान पर्याय को-राग की विकारी पर्याय को उस समय बदलकर वीतरागी पर्याय करने को समर्थ नहीं! पर्याय की क्रमबद्धता का यह सिद्धान्त यथार्थदृष्टि में बैठने से जीव, परद्रव्य से लेकर अपनी पर्याय का भी अकर्ता-ज्ञाता हो जाता है। अकर्ता-ज्ञाता अपने स्वभाव के आश्रय से ही हुआ जा सकता है और स्वभाव का आश्रय लेने जाने पर अन्तर्मुख उपयोग ढलता है और निर्विकल्प अनुभूति होती है। इस प्रकार विकारी पर्याय का नाश होकर वीतरागी पर्याय प्रगट होती है।

❖ ❖ ❖

तत्पश्चात् श्री शम्बुकुमार आदि तीनों कुमार मुनिराज ध्यान में लीन थे। थोड़े समय बाद श्री नेमिनाथ भगवान पुनः गिरनार पर पधारे। तीनों राजपुत्रों ने भगवान की साक्षी में फिर से दीक्षा अंगीकार की। अमुक वर्ष होने पर तीनों मुनिराज ने चार घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् श्री नेमिनाथ

भगवान अनेक देशों में विहार करके भव्यों को अमृतपान कराकर फिर से एक बार गिरनार पर्वत पर पधारे और वहाँ से मोक्ष में विराजमान हुए। उनके साथ प्रद्युम्नकुमार आदि भी मोक्ष में विराजमान हुए।

❖ ❖ ❖

मैं न निर्मल व्याकरणशास्त्र को जानता हूँ, न काव्य जानता हूँ, न तर्क आदि जानता हूँ और न अलंकार आदि गुणों से अलंकृत छन्द जानता हूँ। मैंने इस पवित्र चरित्र का अनुवाद किसी भी प्रकार की कीर्ति आदि की वांछा अथवा मान के वश नहीं किया है परन्तु पापों का नाश करने के लिये किया है। जो विशुद्ध बुद्धिवाले हैं, शास्त्रों के पार को प्राप्त हैं, परोपकार करने में कुशल हैं, पाप से रहित हैं और भव्य हैं, उन्हें मुझ मन्दबुद्धि द्वारा किये हुए इस पवित्र चरित्र का अनुवाद संशोधन करके पृथ्वी पर प्रचार करना चाहिए—ऐसी निर्मल भावना के साथ......